समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

मई–जून–जुलाई–2025, वर्ष 50

₹ 15/-

विमल किशोर श्रीवास्तव की कविता

व्यथित हृदय

ऐसा लगता है जैसे, सब कुछ छूट रहा है,
हर रिश्ता अब मुझसे, थक कर रूठ रहा है।
मैं वही हूं, जहां कल भी खड़ा था,
पर आज हर साया भी, जैसे मुझसे छुप रहा है।

अपनों के बीच भी, दिल है वीरान सा,
हर बात में छिपा है, कोई अनजान सा।
ना कुछ कहने की चाह, ना कुछ करने की बात,
बस ख़ामोशियों में बीतती है अब दिन–रात।

थक गया हूं हर रोज़ ख़ुद को समेटते,
झूठी हँसी पहनकर, दर्द को छिपाते।
कभी जो टूट जाऊं, तो मज़ाक मत समझना,
मैं वो हूं, जो अश्क भी हँसी में छिपा लेता हूँ।

जो मेरी हँसी में दर्द के सुर हैं,
वो ही मेरी असली पहचान के गुर हैं।
और जो तन्हाई में बिखरता हूं हर रोज़,
उस टूटन की आहट कोई नहीं सुनता, कोई नहीं सोचता।

■

पता : 16–आनंदपुरम, सेक्टर–12, विकास नगर,
लखनऊ–226022
मो. : 9936411588

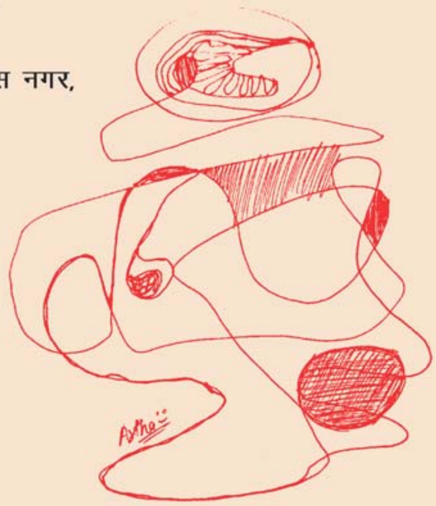

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 49 ❑ अंक 75, 76, 77
❑ मई–जून–जुलाई–2025

अनुक्रम

लेख नमन

- महान स्वतंत्रता सेनानी दामोदर विनायक सावरकर ❑ गौरीशंकर वैश्य विनम्र / 3

ललित निबन्ध

- भरी लू में क्या आप गुलमोहर से मिलने गए? ❑ अखिलेश मयंक / 5
- नदी का घर ❑ संजय गौतम / 8

कहानियाँ

- गाइड ❑ डॉ. जया आनन्द / 12
- स्टेशन ❑ रेणुका अस्थाना / 17
- स्वयमेव जयते ❑ पूजा गुप्ता / 20
- भाई का नाम ही था...'संबल' ❑ पायल लक्ष्मी सोनी / 24
- मेहँदी का रंग ❑ रतन खंगारोत / 26
- वारिस ❑ प्रगति त्रिपाठी / 31
- क्या कहें? ❑ महेन्द्र भीष्म / 34
- आदमख़ोर ❑ सुशांत सुप्रिय / 37
- जड़ें और पंख ❑ श्वेता विकास / 41

लघु कथा

- सच्चा ग्राहक ❑ पुष्पेश कुमार पुष्प / 42
- तीसरी बेटी ❑ वीरेंद्र बहादुर सिंह / 63

कविताएँ

- विमल किशोर श्रीवास्तव की कविता ❑ आवरण–2
- रविन्द्र सिंह पंवार की कविता ❑ आवरण–3
- डॉ. शोभा दीक्षित 'भावना' की ग़ज़ल / 43
- कुमकुम शर्मा की तीन कविताएँ / 44
- जिज्ञासा सिंह की दो कविताएँ / 46
- डॉ. यशोधरा भटनागर की चार कविताएँ / 48
- समरपाल सिंह की एक कविता / 51
- डॉ. इन्दुमती सरकार की एक कविता / 53

पुस्तक समीक्षा

- मानवीय जीवन की वेदना को उकेरती कहानियाँ ❑ जयराम सिंह गौर / 54
- विस्मृत हो रहे जीवन मूल्यों को संजोने की जुगत–व्यस्त... ❑ जयशंकर प्रसाद द्विवेदी / 59

गतिविधि

- शीला पाण्डेय की पुस्तक 'अपने हिस्से का युद्ध' पर चर्चा ❑ कुमकुम शर्मा / 62

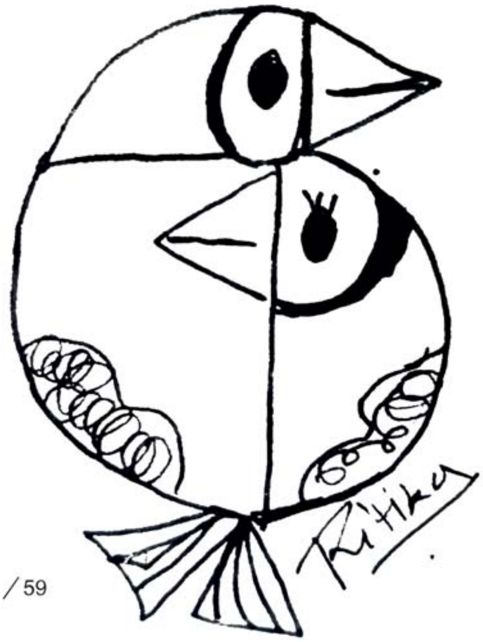

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **विशाल सिंह**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

सम्पादक : ❑ **चन्द्र विजय वर्मा**
सहा. निदेशक, सूचना

सहयोग : ❑ **अजय कुमार द्विवेदी / जयेन्द्र सिंह**
सहयुक्त सम्पादक

उपसम्पादक : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

भीतरी रेखांकन : **आस्था / रीतिका / सिद्धेश्वर**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 7705800978, 9412674759
ईमेल : upmasik@gmail.com

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
–सम्पादक

आवर्तन

भारत में अनेक ऐसे लेखक–लेखिकाएं हुए हैं जिनके साहित्य ने इतिहास पर अपनी अमूल्य छाप छोड़ी है। मुंशी प्रेमचंद भी एक ऐसे ही कालजयी साहित्यकार हैं। उनकी रचनाएं पढ़ने पर आज भी न केवल नवीन प्रतीत होती है, अपितु यथार्थ के धरातल पर खरी उतरती हैं। उनके बारे में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना होगा। प्रेमचंद के लेखन की किरणें केवल भारत की पृथ्वी पर ही नहीं, अपितु संपूर्ण वसुधा पर बिखरी हुई है। अनेक लोग उनकी रचनाओं को पढ़ते हैं, गुनते हैं और बुनते हैं।

31 जुलाई, 1880 को लमही, उत्तर प्रदेश में जब एक बालक धनपतराय का जन्म हुआ होगा, तब किसने सोचा होगा कि आने वाली सदियों में यही बालक अपने कृतित्व के कारण अमर हो जाएगा। धनपत राय का जन्म आर्थिक रूप से विपन्न परिवार में हुआ। पिता डाकखाने में नौकरी करते थे। मात्र सात वर्ष की आयु में ही बालक के सिर से मां का हाथ छूट गया। अभावों से जूझते हुए उन्होंने मैट्रिक तक की पढ़ाई पूरी की। लेखन–पठन का शौक धनपतराय को 13 साल की उम्र में ही लग गया था। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार कहते हैं कि, ''प्रेमचंद को उपन्यास पढ़ने का ऐसा चस्का था कि पुस्तकों की दुकान पर बैठे–बैठे वे उपन्यास पढ़ लेते थे।'' दो–तीन साल के अंदर ही उन्होंने सैकड़ों उपन्यास पढ़ डाले थे। प्रेमचंद की रचनाओं को देखकर यह स्पष्ट होता है कि लेखन से पहले पढ़ना अत्यंत जरूरी है। उनकी प्रत्येक रचना न केवल वास्तविकता की जमीन पर खड़ी दिखाई देती है, अपितु उनकी रचनाओं के पात्र भी हमारे इर्द–गिर्द ही घूमते नजर आते हैं

इनकी पहली पांच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' छपा। इसमें उन्होंने अपनी मातृभूमि के बारे में लिखा था। यह संग्रह छपते ही हर ओर तूफान सा आ गया। अंग्रेजों ने 'सोजे वतन' की सभी प्रतियां जला दीं। उस समय प्रेमचंद 'नवाबराय' नाम से लिखते थे। प्रतियां जलाने के बाद भी प्रेमचंद का मनोबल नहीं गिरा। उन्होंने लिखना नहीं छोड़ा। वे निरंतर लिखते रहे और छपते रहे। अंग्रेजों ने जब इनकी प्रतियां जला दीं तो उन्होंने 'नवाबराय' नाम से लिखना छोड़ दिया। 'प्रेमचंद' नाम उन्हें उर्दू पत्रिका 'जमाना' के संपादक मुंशी दया नारायण निगम ने दिया था। धीरे–धीरे वे इसी नाम से जाने जाने लगे।

उनकी प्रसिद्ध रचनाओं में 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'गोदान', 'निर्मला', 'गबन', 'रंगभूमि' आदि शामिल हैं। प्रेमचंद ने अनेक कथाओं की रचना की। ये सभी कहानियां 'मानसरोवर' नामक संकलन में संकलित हैं। इनकी कहानियों में 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'ठाकुर का कुआं', 'पूस की रात', 'नमक का दारोगा', 'पंच परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बड़े घर की बेटी', 'बड़े भाई साहब' आदि प्रमुख हैं।

वे कहानियों के माध्यम से इतनी गूढ़ बातें कह जाते हैं, जो पाठकों को चमत्कृत और दंग कर देती हैं जैसेः–

– **'सोने और खाने का नाम ज़िंदगी नहीं है, आगे बढ़ने का नाम ज़िंदगी है।'**
– **'संतान वह सबसे कठिन परीक्षा है जो ईश्वर ने मनुष्य को परखने के लिए गढ़ी है।'**
– **'जीवन का वास्तविक सुख, दूसरों को सुख देने में है, उनका सुख छीनने में नहीं।'**
– **'अन्याय होने पर चुप रहना, अन्याय करने के ही समान है।'**

प्रेमचंद ऐसे कथाकार हैं जिन्हें सदियों तक याद किया जाएगा। उनका लेखन निर्धनता, शोषण, अभावों के थपेड़ों की कलम से गढ़ा गया है। इसलिए इसे कोई आग, पानी नहीं मिटा सकता। जब–जब पाठक प्रेमचंद की रचनाओं के सागर में गोते खाता है, तब–तब वह डूबता है, उतराता है, ठोकरें खाता है और आखिरकार तैराक बनकर निकलता है। प्रेमचंद जैसे महान कथाकार को भारत की पावन भूमि पर जन्म लेने के लिए कोटि–कोटि नमन।

● **दिनेश कुमार गुप्ता**

महान स्वतंत्रता सेनानी दामोदर विनायक सावरकर

❑ गौरीशंकर वैश्य विनम्र

वीर साहसी दामोदर विनायक सावरकर की गणना देश के महान स्वतंत्रता सेनानियों में की जाती है। उन्होंने देश की स्वाधीनता की लड़ाई में बढ़–चढ़ कर भाग लिया। अनेक यातनाएँ झेलीं और काले–पानी की काल कोठरी में भी बंद रहे। देश के कृतज्ञ लोगों ने उन्हें "वीर" की उपाधि दी और वे वीर सावरकर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वीर सावरकर का जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के भमूर नामक गाँव में 28 मई, 1883 को हुआ था। उनके पिता श्री दामोदर पंत सावरकर साहित्य एवं देशप्रेमी थे। उनके घर में उनका अपना पुस्तकालय था, वे श्री बाल गंगाधर तिलक के साप्ताहिक समाचार पत्र 'केसरी' को मँगाते थे। बालक विनायक पिता से 'केसरी' में छपे समाचार सुना करते थे। इससे उनके बालमन पर देश–विदेश की गतिविधियों का गहरा प्रभाव पड़ता था। सावरकर की माता राधा बाई धर्मात्मा और परोपकारी महिला थीं। वे भजन और प्रभाती मधुर स्वर में गाकर बालक सावरकर को सुनाती थीं, जिनको वे कंठस्थ कर लेते थे।

सन् 1896–97 में महाराष्ट्र में भीषण अकाल पड़ा। अन्न और चारे के बिना मनुष्य और पशु मरने लगे। इसी समय पूना नगर प्लेग की चपेट में आ गया। सरकार ने इसकी रोकथाम के लिए बाल्टर चार्ल्स रैंड को कमिश्नर नियुक्त किया, जिसके आदेश पर गोरे सिपाही जूते पहनकर पूजाघरों में घुसकर उत्पात मचाते, घरों का कीमती सामान उठा ले जाते और महिलाओं से अभद्रता करते।

कमिश्नर रैंड और उसका साथी गवर्नर के यहाँ से विक्टोरिया के जन्मदिन की दावत से लौट रहे थे, तभी दामोदर चापेकर, वासुदेव चापेकर और बालकृष्ण चापेकर ने रास्ते में ही अपनी गोलियों से उनका काम तमाम कर दिया। तीनों भाइयों को फाँसी दे दी गई। इसका सावरकर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने एक मार्मिक कविता लिखी थी, जिसमें क्रांति की आग भरी थी।

बाल्यावस्था में विनायक की माता और किशोरावस्था में पिता भी चल बसे। बड़ी कठिनाइयों के बीच वे नासिक में पढ़ने लगे। एक कमरा लेकर स्वयं भोजन बनाते, परिश्रम से

पढ़ते और खाली समय में कविताएँ लिखते। इसी समय उन्होंने "राष्ट्रभक्त समूह" नाम की गुप्त संस्था बनायी।

नासिक से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर विनायक पूना गए, जहाँ सन् 1902 में फर्गुसन कॉलेज में भर्ती हो गए। वहाँ छात्रों के साथ मिलकर "आर्थन वीकली" नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला। इसमें विनायक के लेख और कविताएँ छपती थीं। स्नातक करने के बाद वे कानून की पढ़ाई के लिए बम्बई (मुंबई) चले गए। वहाँ उन्हें लंदन में रह रहे प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा देशभक्त भारतीयों को छात्रवृत्ति देने के बारे में जानकारी मिली, तो उन्होंने भी आवेदन पत्र भेज दिया, जो स्वीकार कर लिया गया।

सावरकर सशस्त्र क्रांति के पक्षधर थे। उनकी इच्छा विदेश जाकर वहाँ से शस्त्र भारत भेजने की थी। अतः वे श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्ति लेकर 9 जून, 1906 को लंदन (ब्रिटेन) चले गए। लंदन का ''इंडिया हाउस'' उनकी गतिविधियों का केन्द्र रहा।वहाँ शिवाजी, गुरु गोविंद सिंह, गुरु नानक आदि महापुरुषों की जयंती मनाई जाती थी। वहाँ रहने वाले अनेक छात्रों को उन्होंने क्रांति के लिए प्रेरित किया।लंदन में रहकर सावरकर प्रसिद्ध क्रांतिकारी लाला हरदयाल, मदाम भिखाई जी कामा, वीरेंद्र चट्टोपाध्याय, ज्ञानचंद वर्मा, वायली को मारने वाले मदनलाल ढींगरा आदि के सम्पर्क में आये। सावरकर की गतिविधियाँ देखकर ब्रिटिश पुलिस ने उन्हें 13 मार्च, 1910 को पकड़ लिया, जिसके बाद उन्हें अँग्रेजी शासन के विरुद्ध षड्यंत्र रचने तथा शस्त्र भारत भेजने के अपराध में आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई।

1911 में उन्हें एक और आजीवन कारावास की सजा सुनाकर कालापानी भेज दिया गया। इस प्रकार उन्हें दो आजीवन कारावास मिला। वहाँ उनके बड़े भाई गणेश सावरकर भी बंद थे। जेल में उनपर घोर अत्याचार किए गए। कोल्हू में जोतकर तेल निकालना, नारियल कूटना, कोड़ों की मार, भारी–भरकम हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ना, रस्सी बटना जैसी अमानवीय यातनाएँ उन्हें हर दिन झेलनी पड़ती थीं। रात में उनका कविताएँ लिखने का मन करता। कागज–कलम तो था नहीं, जब कोई विचार आता, तो कोयले से कालकोठरी की दीवारों पर लिख लेते। इसी तरह फुटकर कविताओं के अतिरिक्त "गोमान्तक" महाकाव्य भी लिखा, यह सब उन्होंने कंठस्थ कर लिया था। 1921 में उन्हें अंडमान से रत्नागिरि भेजा गया। 10 मई, 1937 को वे वहाँ से मुक्त कर दिए गए, अब वे देश में कहीं भी आ–जा सकते थे। रत्नागिरि, पूना, बंबई आदि नगरों में उनका भव्य स्वागत किया गया। उनका संदेश था– "हमें भारत को स्वतंत्र कराना है, हमें स्वराज्य प्राप्त करना है।"

वे सुभाषचंद्र बोस के साथ मिलकर क्रांति की योजना में लगे रहे। स्वतंत्रता के बाद उन्हें महात्मा गांधी की हत्या के झूठे मुकदमे में फँसाया गया, परन्तु वे निर्दोष सिद्ध हुए।

वीर सावरकर राजनीति के हिन्दूकरण तथा हिन्दुओं के सैनिकीकरण के प्रबल पक्षधर थे। स्वास्थ्य बहुत बिगड़ जाने पर वीर सावरकर ने प्रायोपवेशन (उपवास के माध्यम से प्राण त्यागना) द्वारा 26 फरवरी, 1966 को स्वेच्छा से देह त्याग दिया।

वीर सावरकर ने ब्रिटिश अभिलेखागारों का गहन अध्ययन कर "1857 का स्वाधीनता संग्राम" ग्रंथ लिखा। ब्रिटिश शासन इस ग्रंथ के लेखन तथा प्रकाशन के पूर्व ही थर्रा गया था। इतिहास में यह एक मात्र ग्रंथ था, जिसे प्रकाशन से पहले ही प्रतिबंधित कर दिया गया। अंततः 1909 में यह हालैंड से प्रकाशित हुआ। यह आज भी 1857 के स्वाधीनता समर का सर्वाधिक विश्वसनीय ग्रंथ है। रत्नागिरि में रहकर सावरकर ने "हिन्दू पद–पाद–शाही", "मेरा आजन्म कारावास" ग्रंथों के अतिरिक्त "संन्यस्त खड्ग", "उत्तर क्रिया", "बोधि वृक्ष" आदि नाटक लिखे। इसके अतिरिक्त उन्होंने "सिक्खों का इतिहास" और इटली के महान देशभक्त "मेजिली की जीवनी" नाम से दो महत्वपूर्ण पुस्तकें और लिखीं।

15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र हुआ, परन्तु खण्डित भी हो गया। वीर सावरकर बहुत दुःखी हुए। वे देश को स्वतंत्र देखना चाहते थे, परन्तु खण्डित नहीं। वीर सावरकर महान देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी, राष्ट्रकवि एवं मनीषी लेखक के रूप में हमें सदैव प्रेरणा देते रहेंगे। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उन्हीं जैसा त्याग करने को तैयार रहें,यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। देश के महान सपूत को कोटिशः नमन। ◆

पता : 117 आदिलनगर, विकासनगर, लखनऊ– 226022
मो. : 09956087585

भरी लू में क्या आप गुलमोहर से मिलने गए?

❑ अखिलेश मयंक

आपने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंध 'कुटज' पढ़ा है क्या? जरूर पढ़ा होगा। आपने देखा होगा कि आचार्य प्रवर ने कुटज पौधे का क्या गजब का वर्णन किया है! उसे उन्होंने 'अपराजेय जीवनशक्ति वाला पौधा' कहा है। निश्चित तौर पर यह विशेषण उस पौधे के लिए सही है। लेकिन कुटज का पौधा, जिसकी फली को इंद्रजौ कहते हैं, वो जंगलों में पाया जाता है। हम तो शहरी इलाकों में सुनसान सड़कों के किनारे खड़े मनमोहक फूलों से लदे इतराते हुए गुलमोहर की उत्कट जिजीविषा को प्रणाम करते हैं, जो प्रचंड गर्मी को झेलते हुए भी अपने भीतर का उल्लास न सिर्फ बरकरार रखता है, बल्कि उसे बाहर भी बिखेरता रहता है। उस उल्लास को आप उसकी डालियों पर लदे पुष्पों के रूप में देख सकते हैं। जेठ–बैसाख की प्रचंड तपिश के समक्ष जब दूसरे पेड़–पौधे म्लानता को प्राप्त हो गए होते हैं, तो गुलमोहर सीना तानकर इठलाता है। न सिर्फ इठलाता है बल्कि सीमित रूप में ही सही, लोगों को छांव भी प्रदान करता है, जो कि प्रत्येक वृक्ष का प्राथमिक कर्म और धर्म है।

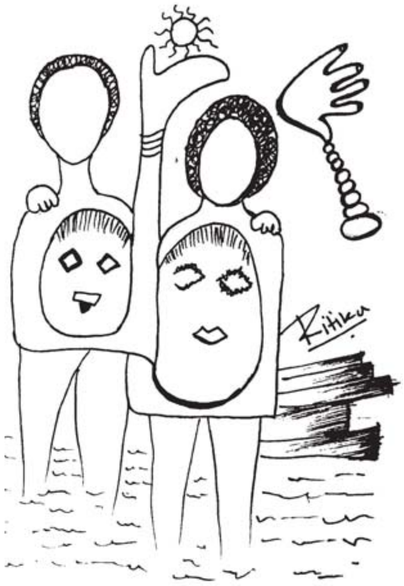

आज हर कोई अपना स्वाभाविक कर्म–धर्म भूलकर दूसरे कामों के ऊपर ज़्यादा ध्यान दे रहा है, लेकिन वृक्ष अपना कर्म–धर्म नहीं भूले हैं, न ही उनके व्यवहार में बदलाव आया है। मनुष्य भले उन्हें काटकर वहां पर कंक्रीट के जंगल उगाने में लगा है, लेकिन वृक्ष अपना स्वभाव नहीं भूले हैं। वे अपने पास आने वाले हर पथिक को छांव देते हैं, बढ़–चढ़कर देते हैं।

इस समय जब 45 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान के साथ चलने वाली लू चेहरा झुलसा दे रही है, तो वातानुकूलित घरों, ऑफिसों, गाड़ियों के आदी लोगों को छोड़कर आम लोगों की बात की जाए तो उनके लिए ज़िंदगी जीना किसी संघर्ष से कम नहीं है। यह संघर्ष रोज सुबह 11 बजे से शुरू होकर शाम तक चलता है। ज्यों–ज्यों भगवान भानु–भास्कर का ताप चढ़ता जाता है, उनका संघर्ष भी तेज़ होता जाता है, लेकिन जिन्हें रोज़ाना रोज़ी–रोटी कमानी है, निर्माण कार्यों में काम करना है, फील्डवर्क में रहना है या नए ज़माने के शब्दों में कहा जाए तो जो 'गिग–वर्कर्स' हैं, उन्हें चैन कहां? उन्हें तो धूप और लू का सामना करना ही है,

मजबूरी में और मज़बूती से करना है। क्योंकि दिनोंदिन जिस तरह धरती का तापमान बढ़ रहा है, उसमें तीखी धूप और लू का सामना करने के लिए तगड़ी शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता की दरकार होगी। हम अखबारों में रोजाना ऐसी ख़बरें पढ़ते भी हैं।

यह संघर्ष कोई आज का या पिछले कुछ दिनों का नहीं है, बल्कि सदैव से रहा है। तभी महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'वह तोड़ती पत्थर' में बहुत कम शब्दों में मज़दूर युवती के जीवन–संघर्ष, उसकी उत्कट जिजीविषा और सूर्यदेव के प्रचंड ताप का विशद वर्णन कर दिया था। ऐसी अभिव्यक्ति–क्षमता इन पंक्तियों के लेखक के पास कभी नहीं आ सकती। 'निराला' की यह कविता जगप्रसिद्ध हुई और इसने 'इलाहाबाद के पथ पर' पड़ने वाली प्रचंड गर्मी की शिद्दत का भी पाठकों, प्रशंसकों को एहसास करवाया। इलाहाबाद (अब प्रयागराज) के नैनी कस्बे से कर्क रेखा होकर निकलती है और यहाँ का समय भारत के लिए मानक समय का काम करता है। कर्क रेखा से नज़दीकी का प्रभाव है कि इलाहाबाद में गर्मी बहुत पड़ती है, क्योंकि यहां सूर्य की किरणें अधिक सीधे रूप से पड़ती हैं, जो तापमान में वृद्धि करती हैं, लेकिन राजधानी लखनऊ भी इस मामले में किसी से पीछे नहीं है। स्वयं कविवर 'निराला' ने भी लखनऊ को 'शिद्दत की गर्मियों वाला शहर' कहा था। ऐसा उन्होंने यूं ही नहीं कह दिया था। उन्होंने इलाहाबाद के साथ–साथ लखनऊ को भी अपनी कर्मभूमि बनाया था। उन्होंने दोनों शहरों के जाड़ा, गर्मी, बरसात को देखा और भोगा था, तब जाकर लखनऊ की गर्मी के बारे में यह राय व्यक्त की थी।

आज हर कोई अपना स्वाभाविक कर्म–धर्म भूलकर दूसरे कामों के ऊपर ज़्यादा ध्यान दे रहा है, लेकिन वृक्ष अपना कर्म–धर्म नहीं भूले हैं, न ही उनके व्यवहार में बदलाव आया है। मनुष्य भले उन्हें काटकर वहां पर कंक्रीट के जंगल उगाने में लगा है, लेकिन वृक्ष अपना स्वभाव नहीं भूले हैं। वे अपने पास आने वाले हर पथिक को छांव देते हैं, बढ़–चढ़कर देते हैं।

सभी विद्वानों, छोटे कवियों, मध्यम कवियों, बड़े कवियों, महाकवियों ने गर्मी के मौसम को कष्ट का मौसम माना है। महाकवि मलिक मोहम्मद जायसी इस मामले में ज़रूर अपवाद हैं, जो एक छोटी–सी शर्त के साथ मानते हैं कि गर्मी कष्टप्रद नहीं है। जायसी यह मानते हैं कि अगर किसी स्त्री का पति घर में मौजूद है (अर्थात नौकरी या व्यापार करने परदेस नहीं गया है), तो उसके लिए गर्मी कुछ भी नहीं है। अन्यथा वह यह नहीं लिखते–'रितु ग्रीखम कै तपिन न तहां। जेठ असाढ़ कंत घर जहां।।' दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उनके भीतर गुलमोहर जैसा आशावाद है, जो उन्हें गर्मी को कष्टकर मानने से मना करता है, वह बहाना भले कंत (पति) का लेते हों। चलिए, बहुत अच्छी बात है। किसी महाकवि ने तो गुलमोहर का साथ दिया !

इस समय किसी भी दिन दोपहरी में अचानक निकल जाइए तो आंखें चौंधिया जाएंगी। किसी दिन भरी दोपहरी का आनंद लेने सड़कों पर निकलिए (एसी गाड़ी में नहीं), तो देखेंगे कि चढ़ती दोपहरी के साथ–साथ तपिश, लू और गर्दो–गुबार का ग्राफ भी चढ़ता जाता है। कुछ ही मिनटों में आपके शरीर के अंग–प्रत्यंग से पसीना निकलने लगेगा, जिसे सुखाने के लिए अगर आप कृत्रिम तरीके न अपनाना चाहें तो प्राकृतिक उपायों में पेड़ों की छांव ही बचती है। तब आपका ध्यान जरूर किसी सड़क पर खड़े गुलमोहर के वृक्ष की तरफ जाएगा, जो इस भरी दोपहरी में अपराजेय योद्धा की तरह खड़ा नज़र आ रहा होगा। आप उसके नीचे जाकर, अगर वह छायादार हुआ, अपने व्याकुल चित्त को शांत कर सकते हैं।

इस मौसम में खेती–किसानी का काम बेहद मुश्किल भरा हो जाता है, लेकिन बेचारे किसान कहां भागकर जाएं? उनकी तो यह नियति है। वे गर्मी ही नहीं, सर्दी और बरसात के अतिरेक के भी अभ्यस्त होते हैं। इसी दौर में उनकी किसानी का काम जोर पकड़ता है। अगर वे एअरकंडीशंड कमरों में जाकर बैठ जाएं तो खुद क्या खाएं और एअरकंडीशंड कमरों में बैठकर गर्मी काटने वालों के खाने के लिए अनाज भला कैसे पैदा हो? इसलिए किसान अपना काम खुशी–खुशी करते हैं। वे इसे अपने दैनिक जीवन का

हिस्सा मानकर चलते हैं। यह मानकर काम करते हैं कि यह हमारी आजीविका है। इससे मेरा और मेरे परिवार का लालन–पालन होना है। इसलिए इसको हमें करना ही करना है। शहरों में, ख़ासकर राजनीतिक मंचों पर उनसे संबंधित कई प्रश्न जेरेबहस रहते हैं, लेकिन वे इन सभी से असंपृक्त होकर केवल और केवल खेती–किसानी पर ध्यान देते हैं। उनके लिए कृषिकर्म किसी पूजा से कम नहीं है। ऐसी पूजा, जिससे समाज और देश का पेट भरता है। शायद सबसे महत्वपूर्ण कर्म है यह! बाकी सारे काम कृषिकर्म के समक्ष द्वितीयक हैं।

बच्चों के बीच पहले जेठ की गर्मियों में नानी के घर जाने का चलन था। चलन नहीं, बल्कि क्रेज था। किंतु अब यह कम हो गया है। बच्चे जाते भी हैं तो वहां जाकर केवल शरीर से रहते हैं, मन मोबाइल में व्यस्त रहता है। कहीं–कहीं तो उनके साथ–साथ मम्मी और नाना–नानी भी मोबाइल में व्यस्त रहते हैं। अब न कोई बच्चा बागों में खेलकर गर्मी की तपिश का एहसास करता है, न ताल–तलैय्यों में नहाता है। कई कोणों से आधुनिकता की मार ने सभी बच्चों को पंद्रह बाई दस वर्ग फुट या इससे मिलते–जुलते साइज के कमरों में बंद रहने को विवश कर दिया है।

एअरकंडीशन और बिजली के अन्य अपलायंसेज ने गर्मी के कहर से लोगों को काफी हद तक बचा लिया है। यह कुछ हद तक ज़रूरी भी है। कारण, जिस तरह पिछले कुछ दशकों में अपने देश के साथ–साथ दुनिया में विकास के नाम पर अंधाधुंध पेड़ काटे गए हैं, उससे धरती का काफी तापमान बढ़ा है। प्रकृति को अपनी दासी मानने की हमारी प्रवृत्ति ने हमें मौत के मुहाने पर लाकर बैठा दिया है। प्रकृति हमसे बहुत ही कुपित है। उसका यह कोप प्रलय के किस स्वरूप में हमारे सामने कब आ आए, कोई नहीं जानता। इसलिए हमें प्रकृति के संरक्षण पर अधिकाधिक ध्यान देना होगा। अपने बच्चों में प्रकृति से प्रेम के संस्कार जागृत करने होंगे। वरना वह दिन दूर नहीं जब पूरी दुनिया आग की भट्ठी बन जाएगी।

सभी विद्वानों, छोटे कवियों, मध्यम कवियों, बड़े कवियों, महाकवियों ने गर्मी के मौसम को कष्ट का मौसम माना है। महाकवि मलिक मोहम्मद जायसी इस मामले में ज़रूर अपवाद हैं, जो एक छोटी–सी शर्त के साथ मानते हैं कि गर्मी कष्टप्रद नहीं है। जायसी यह मानते हैं कि अगर किसी स्त्री का पति घर में मौजूद है (अर्थात नौकरी या व्यापार करने परदेस नहीं गया है), तो उसके लिए गर्मी कुछ भी नहीं है। अन्यथा वह यह नहीं लिखते–'रितु ग्रीखम कै तपिन न तहां। जेठ असाढ़ कंत घर जहां।।' दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उनके भीतर गुलमोहर जैसा आशावाद है, जो उन्हें गर्मी को कष्टकर मानने से मना करता है, वह बहाना भले कंत (पति) का लेते हों। चलिए, बहुत अच्छी बात है। किसी महाकवि ने तो गुलमोहर का साथ दिया !

हमें–आपको एक दिन भरी दुपहरी में निकलकर सड़क किनारों पर, गांवों में, खेतों में खड़े पेड़–पौधों से संवाद करना चाहिए। उनके दर्द को महसूस करने की कोशिश करनी चाहिए। गुलमोहर की जिजीविषा से प्रेरणा लेनी चाहिए, जो जेठ–बैसाख में सूर्यदेव के असहनीय ताप को हंसकर झेलता है। हमें दुःख में मुस्कुराने को प्रेरित करता है। अगर आप किसी कारणवश दुःखी या चिंता में हों तो भी एक बार गुलमोहर के पास जरूर जाएं। जाने का समय वही चुनें–भरी दुपहरिया का समय। उम्मीद है कि वह आपके भीतर के सकारात्मक हार्मोन्स को स्रावित करेगा। इससे आपको नई ऊर्जा मिलेगी। आपका अवसाद कम होगा। गुलमोहर के पेड़ के नीचे आप गर्मी को जरूर कम महसूस करेंगे। क्योंकि जहां पर सकारात्मकता है, वहां कुछ भी संभव है।

हां, तो आप कब जा रहे हैं गुलमोहर से मिलने, उससे संवाद करने, भारी लू को सीना ठोंककर चुनौती दे रहे उस अपराजेय योद्धा की हौसलाअफ़ज़ाई करने। ◆

पता : ए–274/ई, शिवाजीपुरम,
सेक्टर 14, इंदिरानगर, लखनऊ–226016
मो. : 8400645735

नदी का घर

❑ संजय गौतम

आत्मन वैसे तो हमेशा दोराहे पर होते थे, लेकिन आज वह तिराहे पर थे। चार लेन की सड़क एक दिशा से आकर लगभग समकोण बनाती हुई दूसरी ओर मुड़ जाती थी और एक पंद्रह बीस फिट की सड़क सीधे निकल जाती थी। जैसे ही आत्मन इस रोड पर आए, उन्हें लगा दूसरी दुनिया में आ गए। चौड़ी सड़क के चकमक शोरूमों, मॉलों, बड़ी–बड़ी दुकानों को पीछे छोड़ जब वह इस दुनिया में आए तो उन्हें सड़क के किनारे प्लास्टिक की छाजन वाली झोपड़ियां और छोटी दुकानें दिखाई पड़ीं। उन्हें यह रास्ता जाना–पहचाना सा लगा। इधर वह किसी बेंच पर बैठकर चाय पी सकते थे, कड़ाही में से तुरंत निकलती हुई पकौड़ी खा सकते थे, ठेले पर अंडे का आमलेट खा सकते थे, भूजा हुआ गरम–गरम दाना खा सकते थे, सत्तू का शरबत पी सकते थे, सबसे बड़ी बात कि पटरी पकड़ कर पैदल आराम से चल सकते थे, तेज़ रफ्तार गाड़ी से झटका खाकर फिंक जाने का डर नहीं था।

जब वह नौकरी में स्थानांतरित होकर इस शहर में आए तब उन्हें सबसे ज्यादा खुशी इस बात की हुई कि यह तीन नदियों वाला शहर है। गंगोत्री से दक्षिण पूरब की ओर बहती हुई गंगा इसी शहर के दक्षिण से उत्तरवाहिनी होकर शिव के भाल को निहारती हुई फिर पूरब की ओर चली जाती हैं, समुद्र संगम करने। फाफामऊ, प्रयागराज के मैलहन झील से उत्फुल्लित वरुणा नगर को उत्तर से बाँधती हुई आदिकेशव घाट पर गंगा के गले मिलती है। किसी ज़माने में इसी के शांत कछार के एकांत में बैठकर महात्मा बुद्ध ध्यान लगाया करते थे और शिष्यों को उपदेश देते थे।

आत्मन यह सब जानकर इसलिए खुश होते हैं कि जिस गांव में उनका जन्म हुआ था उसके किनारे कोई नदी नहीं बहती थी, जिसके किनारे बैठकर वह पानी को बहता हुआ देख सकें। गाँव में चार–पाँच पोखरियां थीं, जिसमें बरसात का पानी भर जाता था। उन्हीं पोखरियों में से एक में आत्मन अपने बचपन के साथियों के साथ नहाया करते थे। आत्मन को पानी इतना

अच्छा लगता कि जहाँ दिख जाता वहीं छप–छप किया करते। लोग बताते हैं कि एक बार बकैयां खींचते हुए आत्मन मिट्टी के चबूतरे पर रखी हुई गगरी के पास गए और भरी हुई गगरी पकड़ कर लटक गए। गगरी उनके ऊपर गिरी और फूट गई। आत्मन पानी में और फूटी गगरी के टुकड़ों में छटपट कर रहे थे कि चाची का ध्यान गया और दौड़कर आत्मन को ऊठा लाईं। माँ ने आकर लगाया दो थपाका। आत्मन और तेज़ी से रोने लगे। दादी ने अपनी गोद में लेकर पुचकारा और देखा आत्मन को कहीं चोट तो नहीं लगी।

लोग यह भी बताते हैं कि आत्मन एक बार छुटपन में अपने चाचा के साथ पोखरी पर गए थे। चाचा और उनके दोस्त पोखरी में नहाने लगे तो आत्मन से रहा नहीं गया और वह भी धीरे से पोखरी में उतर कर डूब गए। गनीमत यह हुई कि चाचा के दोस्तों का ध्यान गया और उन लोगों ने पोखरी से उन्हें निकाल लिया। तब तक वह भरपूर पानी पी चुके थे। पेट दबा–दबाकर पानी निकाला गया, आत्मन को होश आया तब सबकी जान में जान आई। लोगों ने कहा, बच्चे के बाल में भौंरी है, आग–पानी से बचाकर रखो, जान का खतरा बना रहेगा। तब से घर वाले भरसक कोशिश करते कि आत्मन पानी के पास न जाने पाएं, लेकिन आत्मन थे कि जब भी मौका मिलता पानी के पास। थोड़ा बड़े और समझदार हुए तो भैंस चराने जाने लगे। क्या दिन थे वे भी, चरती हुई भैंस की पीठ पर बैठकर आत्मन अपने को हाथी की पीठ पर बैठा हुआ समझते। चरने के बाद भैंस जब पोखरी के पानी में उतरकर किसी पक्षी की तरह हल्की हो तैरती तो वह किनारे बैठकर देखते। देखना उन्हें अच्छा लगता। कभी एक कंकड़ उठाकर पोखरी में उछाल देते और लहरों का किनारे जाता हुआ वृत्त देखते। उनका सबसे प्रिय खेल था खपड़े का टुकड़ा लेकर पानी की सतह पर इस तरह फेंकना कि सरसराता हुआ पानी के पार चला जाए। टुकड़ा पानी के पार तक पानी को काटता हुआ जाता और लहरें इधर–उधर भागतीं। आत्मन को मज़ा आ जाता। तब और मज़ा आता जब साथ में एक–दो साथी भी अपनी भैंस के साथ होते। सभी इस खेल में मशगूल हो जाते और साँझ घिर आती।

जब वह नौकरी में स्थानांतरित होकर इस शहर में आए तब उन्हें सबसे ज़्यादा खुशी इस बात की हुई कि यह तीन नदियों वाला शहर है। गंगोत्री से दक्षिण पूरब की ओर बहती हुई गंगा इसी शहर के दक्षिण से उत्तरवाहिनी होकर शिव के भाल को निहारती हुई फिर पूरब की ओर चली जाती हैं, समुद्र संगम करने। फाफामऊ, प्रयागराज के मैलहन झील से उत्फुल्लित वरुणा नगर को उत्तर से बाँधती हुई आदिकेशव घाट पर गंगा के गले मिलती है। किसी ज़माने में इसी के शांत कछार के एकांत में बैठकर महात्मा बुद्ध ध्यान लगाया करते थे और शिष्यों को उपदेश देते थे।

किसी समय यह गाँव था, जिसे शहर अपनी गोद में बिठाकर तेजी से खा रहा था। खेती की ज़मीन प्रायः ख़त्म हो गई थी। हर तरफ मकान ही मकान दिख रहे थे। गाँव की बस्तियों के मकान अलग तरह के थे और नई कॉलोनीनुमा बस्तियों के अलग तरह के। बीच–बीच में कई अपार्टमेंट उग आए थे। हरियाली कहीं–कहीं ही दिखती थी। मुख्य सड़क पर एक पोखरा था, जिस पर गाँव वालों को गर्व था। गर्व करने लायक था भी। पोखरे का क्षेत्र काफी बड़ा था। दरअसल यह कई तालाबों का समूह था, लेकिन अब एक मुख्य पोखरा बचा था। बाकी पोखरों को पाटकर पत्थर बिछा दिए गए थे। सारे पेड़ काट दिए गए थे। लगता था पूरी जमीन पर दुकानें बनाई जाएंगी। लोगों को आय बढ़ाने का दूसरा ज़रिया नहीं समझ आ रहा था।

सौंदर्यीकरण योजना के तहत मुख्य पोखरे के चारों तरफ रेलिंग लगा दी गई थी। सीढ़ियां बन गई थीं। पोखरे के किनारे गाँव का पुराना मंदिर था और एक पीपल का पेड़, जिसके नीचे चबूतरा था। यही वह जगह थी, जहाँ गांव वाले अपने रीति–रिवाज़ और परंपराओं के अनुसार पूजा–पाठ करने आते थे। शादी का हर नया जोड़ा यहाँ पूजा करने आता। साथ में महिलाएं, लड़कियां और बाजा वाले होते। जब नगाड़े की धिनक धिनक होती सभी नृत्य में

मगन हो जाते। आत्मन के भी पैर थिरकने लगते, लेकिन वह अपने आप को रोकते। सोचते क्या ही दुर्भाग्य है उनका मंगल और मुक्ति के इस उल्लास उत्सव नृत्य में शामिल भी नहीं हो सकते।

आत्मन को यहाँ आकर बैठना अच्छा लगता। थोड़ी देर के लिए लगता वह अपने ही गाँव के पोखरे पर आ गए हैं, लेकिन कहाँ अपना गाँव, कहाँ उजड़े हुए गाँव का यह आख़िरी पोखरा। पता नहीं अपने गाँव का भी बचा होगा या नहीं। वे अक्सर शाम को यहाँ बैठे रहते और सड़क के किनारे बने प्लास्टिक के घरों को देखते रहते। थोड़ी रात होती तो घरों में खाना बनना शुरू होता। आत्मन देख रहे थे एक घर में एक साँवली ह्वष्ट–पुष्ट महिला स्टोप के सामने बैठी है। उसके पास रखी थाली में अंडे रखे हुए हैं। आज अंडाकरी बनेगी। लगता है कोई मेहमान आया है। अच्छे खाने की तैयारी है। बाहर एक फोल्डिंग चारपाई पर दो लोग बैठकर बात कर रहे हैं। आत्मन सोच रहे हैं अपना गाँव होता तो वह भी जाकर चारपाई पर बैठकर बात कर लेते। पूछते कि आज क्या–क्या बन रहा है।

एक दईत आ गया है। उसने घर को अपने जबड़े में दबोचना शुरू कर दिया है। सभी लोग बिलबिलाकर बाहर आ गए हैं। माँ, बच्चे–बूढ़े सभी। औरत गोद में बच्चा लिए चीख रही है–'जो करना हो दिन में करना भइया। अभी हम रात को कहाँ जाएंगे'। 'अरे हट, इतने दिन से तो कहां जा रहा है, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ'। औरत जल्दी जल्दी अपना सामान बाहर कर रही है। आदमी और बच्चे भी सामान बाहर कर रहे हैं। स्टोब और अंडा भी बाहर आ गया है। लोग कह रहे हैं जैसी चौड़ी सड़क मोड़ के आगे है वैसी चौड़ी सड़क इधर भी बनेगी। औरत अब मशीन के आगे खड़ी हो गई है, 'रुको–रुको भइया, हमें मार के जाओगे क्या'। दो आदमी पकड़ कर औरत को पीछे खींच रहे हैं, औरत चीख रही है। अंडा छितरा गया है, फूट कर पिल–पिल बह रहा है....

आत्मन का मन न जाने कहाँ–कहाँ बवंडर देखता रहता है, जो चीज़ नहीं भी हो रही होती है, उन्हें दिखने लगता है। उन्हें जब नहीं तब इधर जेसीबी चलती हुई मालूम होती है। वे सोचते रहते हैं वह भूजा वाला कहाँ जाएगा, जिससे वह दाना और सत्तू खरीदते हैं। वह चाय वाला कहाँ जाएगा। वह प्रेस करने वाला धोबी फिर कहाँ जाएगा। क्या ये सभी और आगे बढ़ जाएंगे, बाहरी तरफ, आउटस्कर्ट में। इन लोगों की नियति ही है, मरते घिसटते हुए जीते रहना। शहर न इन्हें मरने देता है, न जीने। ये न रहें तो उनकी ज़रूरत न पूरी हो, इसलिए बसाते हैं। फिर जगह की ज़रूरत होती है तो उजाड़ कर पीछे ठेल देते हैं। उजड़ कर बसना और बस कर फिर उजड़ना, कितना क्रूर मज़ाक है। आत्मन पोखरे से उठते हैं, यही सब सोचते हुए घर वापस आते हैं, उनका दिमाग़ भरमता रहता है।

आत्मन का मन न जाने कहाँ–कहाँ बवंडर देखता रहता है, जो चीज़ नहीं भी हो रही होती है, उन्हें दिखने लगता है। उन्हें जब नहीं तब इधर जेसीबी चलती हुई मालूम होती है। वे सोचते रहते हैं वह भूजा वाला कहाँ जाएगा, जिससे वह दाना और सत्तू खरीदते हैं। वह चाय वाला कहाँ जाएगा। वह प्रेस करने वाला धोबी फिर कहाँ जाएगा। क्या ये सभी और आगे बढ़ जाएंगे, बाहरी तरफ, आउटस्कर्ट में। इन लोगों की नियति ही है, मरते घिसटते हुए जीते रहना। शहर न इन्हें मरने देता है, न जीने। ये न रहें तो उनकी ज़रूरत न पूरी हो, इसलिए बसाते हैं। फिर जगह की ज़रूरत होती है तो उजाड़ कर पीछे ठेल देते हैं। उजड़ कर बसना और बस कर फिर उजड़ना, कितना क्रूर मज़ाक है। आत्मन पोखरे से उठते हैं, यही सब सोचते हुए घर वापस आते हैं, उनका दिमाग़ भरमता रहता है।

उनके दिमाग में दईत डोलता रहा। भोर में ही नींद खुल गई। वह नीचे उतर आए। चैत के भोर की हल्की सिहरावन हवा चल रही थी। घर के पीछे बाँसों का एक छोटा सा झुरमुट था। वहीं एक जामुन और दो तीन आम के पेड़ थे। सब्जी–भाजी उगाने भर थोड़ी सी जगह थी। बुढ़ऊ खुर्पी

हाथ में लिए कुछ करते दिखाई पड़ते थे। पौधों में पानी डालते रहते थे। लोग कहते बस बुढ़ऊ के टपकने की देर है। गए नहीं कि यह जमीन भी बिल्डर के हाथ चली जाएगी। आत्मन सोचते यह हरियाली का द्वीप खत्म हो जाएगा तो चिड़िया कहाँ चहचहायेगी। कोयल की कूक कहाँ से सुनाई देगी, यह झुरझुरी हवा उन्हें कैसे मिलेगी। सोचते–सोचते इतनी अच्छी मुलायम सुरभित हवा के होते हुए भी उनका मन उकतने लगा। वहाँ बैठे–बैठे मन नहीं लगा तो सोचे चलो सूर्योदय देखा जाए।

वह नदी के घर की तरफ बढ़ चले सूर्योदय देखने के लिए। उन्हें पता लगा था कि इस शहर की तीसरी नदी का घर यहीं पास में है। वह सड़क पर सीधे गए तो एक पुलिया के नीचे नदी की पतली सी धारा बहती हुई दिखी। उन्होंने सोचा इसी धारा को पकड़कर नदी के घर चला जाए, लेकिन नदी के पेटे में घुसे हुए इतने मकान बन गए थे कि वह धारा के किनारे–किनारे नहीं चल सकते थे। वे अंदाज़ से कॉलोनी के रास्ते को पकड़ते हुए उसी दिशा में चलने लगे। बीच में एक दो जगह और सड़क के नीचे पुलिया मिली, जिसके नीचे से नदी की धारा प्रवाहित हो रही थी। खोजते–खोजते अंत में वे एक सड़क से होते हुए नदी के घर पहुँचे।

नदी का घर आज जितना बड़ा था, उसी को देखकर लगता था कि किसी ज़माने में कितना बड़ा रहा होगा। नदी के घर को किनारे से घेरते हुए ऊंची–ऊंची चारदीवारी बन गई थी। चारों तरफ मकान खड़े हो गए थे। नदी के घर में पानी एकदम नहीं दिख रहा था, केवल जलकुंभी की पत्तियां दिख रही थीं। चारों तरफ कूड़े के अंबार से अजीब किस्म की बजबजाहट और बदबू तारी थी। पूरबी आकाश में लाल टीके की तरह सूरज दमक रहा था, लेकिन उसका बिंब देखने के लिए नदी के घर में पानी नहीं था, गंदला भी नहीं।

आत्मन सड़क की उसी पुलिया पर बैठ गए, जिसके नीचे से नदी की पतली सी धारा आगे की ओर बढ़ी थी। वह एकटक नदी के घर को देख रहे थे। नदी को मरते हुए देख रहे थे। उसका दम घुटते हुए देख रहे थे। सोच रहे थे, नदी मर जाएगी तो कैसे गंगा जी के गले भेंटेगी। वह कुछ भी ठीक से सोच नहीं पा रहे थे। बैठे–बैठे सिर्फ अपने बालों को पकड़ कर खींच रहे थे। नदी कह रही थी, आए हो सूरज का बिंब देखने। देख नहीं रहे हो कैसे मेरी छाती को जलकुंभियों ने जकड़ रखा है। कभी मेरे भीतर से लहर उठती थी और मैं उमड़–घुमड़ कर चल पड़ती थी गंगा से मिलने। मेरी धार असि की धार की तरह थी, तीखी तेज़। मेरा पानी कल–कल, छल–छल करता हुआ बहता था। मेरे पार्श्व में कर्दमेश्वर महादेव हैं, मेरे रास्ते में मनोकामना मंदिर है। एक समय था, जब लोग मेरे पानी से खाना बनाकर खाते थे और आज ऐसा दिन आ गया कि कोई सूंघता भी नहीं है। कहीं धारा दिखती ही नहीं है। नाला बनाकर छोड़ दिया लोगों ने। समय–समय पर और लोग आते हैं, देखने–ताकने, नाप–जोख करने। पता नहीं कब से चल रहा है तमाशा, मेरे उद्धार का, लेकिन दिनों–दिन मैं सूखती ही जा रही हूँ, सूखती ही जा रही हूँ.... आत्मन सिर पकड़े–पकड़े उठे और वापस लौटने लगे, थथम–थथम कर, धीर–धीरे चलते हुए–

लौट जाओ वत्स
नदी का सूखना है
सभ्यता का सूखना ही
कि जिसके कंगूरे पर खड़े
तुम इठला रहे हो
नींव का पत्थर हुआ रसहीन
निरा पत्थर दरकता चुरमुरा सा
कि सदियों पुरानी सभ्यता
पलुही हमारे ही किनारे
कि हमी ने जीवन दिया
रस से सींचा
अन्न प्राण दिए
मारे गए हम ही तुम्हारी आँधियों में
सूखा रस हमारा
और हम हो रहे निष्प्राण
नहीं कोई धारा

पता : 206, रेजीडेन्सी अपार्टमेंट, भिखारीपुर,
वाराणसी–221004
मो. : 9794861011

गाइड

❑ डॉ. जया आनन्द

नवाबों के शहर लखनऊ में एक समय तांगा चला करता था, यहां के इमामबाड़े के पास अब भी सरपट दौड़ते हुए तांगे दिख जाते हैं पर यह तहज़ीब पसंद शहर अपनी तबीयत बदलने लगा है, अब यहाँ की सड़कों पर भी कारों टैक्सियों की रफ़्तार बड़ी तेज़ी से बढ़ी है। उस दिन लखनऊ अमौसी हवाई अड्डे पर नामों की तख्ती लिए टैक्सी चालक बेसब्री से अपनी–अपनी सवारियों का इंतज़ार कर रहे थे। इंतज़ार की घड़ियां गिनना... उफ्फ कितना कठिन होता है ये कौन नहीं जानता...

''दिल्ली की फ्लाइट आए कितना समय हो गया...ये मैडम आ ही नहीं रहीं, रात के 11 बज चुके हैं...सोनी को फोन लगा लेते हैं...नहीं तो परेशान होगी. ..गुड्डन तो सो गई होगी'' टैक्सी ड्राइवर मन में बोले जा रहा था।

तभी मिस अपूर्वा शर्मा अपने नाम की तख़्ती लगी देख कर उस टैक्सी चालक के पास आ गई ''अरे दरअसल मेरा लगेज बेल्ट पर आ ही नहीं रहा था, बाद में पता चला कि कुछ लगेज दिल्ली एयरपोर्ट पर ही रह गया है, अगली फ्लाइट से लाया जाएगा...आय एम रियली फेडप...मुझे चिढ़ है इस तरह के मिस मैनेजमेंट से ''अपूर्वा ज़ोर से चिल्लाई''

''मैडम! आप परेशान मत होइए, आ जायेगा आपका लगेज, आप आइए आराम से मेरी गाड़ी में बैठिए, थोड़ी बहुत परेशानी तो ज़िंदगी में लगी रहती है, ज़्यादा चिंता मत कीजिए मैडम।

अपूर्वा पीछे गाड़ी में चिंतित हो बैठ गई। वो दिल्ली की मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर के पद पर काम करती थी। लखनऊ एक मीटिंग के सिलसिले में आई हुई थी। दो दिन का प्रोग्राम था। लखनऊ शहर पहली बार आ रही थी, सोचा कि यदि समय मिला तो घूम भी लेगी। लखनऊ शहर के बारे में उसने बहुत सुन रखा था। ...पर अभी तो वो बहुत परेशान थी...लगेज कब कैसे आएगा...तभी टैक्सी ड्राइवर ने कहा ''मैडम!आप चिंता मत कीजिए आ जाएगा आपका सामान, आप चेहरे से परेशान दिख रही हैं।''

''तुम ड्राइविंग पर ध्यान दो'' अपूर्वा हल्के गुस्से से टैक्सी ड्राइवर को बोल पड़ी, पता नहीं क्यों इतनी सहानुभूति दिखा रहा है, चुपचाप अपनी गाड़ी चलाए, बहुत जानती हूँ इन टैक्सी ड्राइवरों को, अपूर्वा मन में ही बड़बड़ा रही थी।

उसे एक टैक्सी ड्राइवर की याद आई जो पहले तो इतनी धीमे गाड़ी चला रहा था कि उसकी ट्रेन ही छूट जाती और फिर उसने कोई बिच्छू छाप चूरन खाया और टैक्सी हवा से बातें करने लगी, उसने समय से काफी पहले पहुँचा दिया था, अपूर्वा उसे याद करते हुए मुस्कुरा पड़ी।

''अब ठीक है मैडम'' टैक्सी ड्राइवर ने शीशे में अपूर्वा के मुस्कुराते हुए चेहरे को देख कर कहा ''क्या ठीक है...तुम चुपचाप अपनी गाड़ी चलाओ'' अपूर्वा का लहज़ा तल्ख़ था ''अच्छा—अच्छा ठीक है मैडम! आप गुस्सा मत कीजिए,'' टैक्सी ड्राइवर मस्त हो कर अपनी टैक्सी चलाने लगा।

20—25 मिनट में होटल आ गया जहाँ अपूर्वा को उतरना था। टैक्सी ड्राइवर ने टैक्सी रोक दी। ''कल मीटिंग के लिए जाना है...गोमती नगर में शायद...'' अपूर्वा ने कहा ''जी मैडम! अपना गूगल मैप ज़िंदाबाद, बाकी मुझे भी पता है...लेकिन मैडम आप परेशान मत होइएगा किसी बात के लिए'' टैक्सी ड्राइवर ने छूटते ही कहा। ''तुम अपने काम से काम रखो...समझे और तुम्हारा पेमेंट तो कंपनी देगी न! ...हाँ तुम्हारा नाम? अपूर्वा ने गुस्से से पूछा।

''जी मैडम! मनोज मिश्रा नाम है मेरा...मैं कल ठीक नौ बजे हाज़िर रहूँगा और चिंता मत कीजिएगा, आपका लगेज आ जाएगा। गुड नाइट मैडम'' टैक्सी ड्राइवर अपनी धुन में मस्त हो टैक्सी चलाता हुआ चला गया।

अपूर्वा को टैक्सी वाले की सहजता पर गुस्सा आ रहा था। वास्तव में अपूर्वा सिर्फ लगेज की वजह से ही नहीं परेशान थी, अभी कुछ ही समय पहले उसकी शादी हुई थी शादी के बाद अपूर्वा अपने पति के साथ पूर्वोत्तर भारत गई थी। वहाँ की प्रकृति के सुरम्य दृश्यों के साथ जीवन के सुंदर पलों को सहेजे बहुत खुश थी अपूर्वा।

वहाँ से लौटने के कुछ दिनों बाद ही उसके ससुर का हार्ट अटैक से देहांत हो गया और फिर सासू माँ का रवैया अपूर्वा के प्रति कुछ सख्त हो चला था। घर गृहस्थी के साथ इस बड़ी मल्टीनेशनल कपनी में जॉब करना...घर में सासू माँ और सब के साथ सामंजस्य बिठाना, सुख जैसे खिड़की से छलांग लगा कर दूर छिटक गया था।

नवाबों के शहर लखनऊ में एक समय तांगा चला करता था, यहां के इमामबाड़े के पास अब भी सरपट दौड़ते हुए तांगे दिख जाते हैं पर यह तहज़ीब पसंद शहर अपनी तबीयत बदलने लगा है, अब यहाँ की सड़कों पर भी कारों टैक्सियों की रफ़्तार बड़ी तेज़ी से बढ़ी है। उस दिन लखनऊ अमौसी हवाई अड्डे पर नामों की तख्ती लिए टैक्सी चालक बेसब्री से अपनी—अपनी सवारियों का इंतजार कर रहे थे। इंतज़ार की घड़ियां गिनना...उफ्फ कितना कठिन होता है ये कौन नहीं जानता...

अपूर्वा जिस सुन्दर सपने को जीना चाहती थी वो तो यथार्थ की चक्की में पिसने सा लगा था...और फिर ये लगेज न आने की परेशानी। सुबह ठीक नौ बजे टैक्सी ड्राइवर मनोज हाजिर था ''गुड मॉर्निंग मैडम'' हँसते—मुस्कुराते चेहरे के साथ उसने अपूर्वा का अभिवादन किया। अपूर्वा ने फीकी सी मुस्कान के साथ उसका जवाब दिया और टैक्सी में बैठ गई। ''मैडम! वो आपका लगेज आ गया? टैक्सी वाले ने तुरंत ही पूछ लिया'' हाँ आज सुबह 7 बजे एयरपोर्ट से लगेज आ गया था...अच्छा लखनऊ की चिकनकारी के बारे में खूब सुना है... आज तीन बजे के बाद मैं फ्री हूँ, मुझे ले चलना अगर तुम्हें मालूम हो, अपूर्वा गंभीर बनी रही।

''मैडम! मुझे तो लखनऊ का चप्पा—चप्पा मालूम है, आपको सब घुमा दूँगा।'' टैक्सी ड्राइवर से उसने कहा ''ठीक है तीन बजे आ जाना'', अपूर्वा के स्वर में थोड़ी भी नरमी नहीं आई थी। तीन बजे टैक्सी ड्राइवर अपूर्वा को टैक्सी से लखनऊ के चौक इलाके में ले गया जहाँ चिकन की कढ़ाई का काम होता है।

''देखिए मैडम! यहां आपको चिकन की कढ़ाई के बेहतरीन नमूने मिलेंगे जो चाहे आप लें, मुर्री वर्क, टेपची वर्क, मुकेश वर्क, रेशम की कढ़ाई...सब एक से बढ़कर एक हैं, उसके बाद आपको यहां मलाई मक्खन की दुकान पर ले चलूंगा, ठंड में बहुत बढ़िया मलाई मक्खन बिकता है और दही बड़े के तो क्या कहने...टैक्सी ड्राइवर बोलता जा रहा था। अपूर्वा सोचने लगी कि ये ड्राइवर है या गाइड। चौक में उसने कुछ चिकन कारी की साड़ियां और सूट लिए। मन अशांत हो तो कुछ खरीदने से हल्का हो जाता है, अपूर्वा भी यही करने की कोशिश कर रही थी। उसने सोचा था कि ज़िंदगी सुख–चैन से कटेगी पर मन का सोचा कब होता है अभी तो सासू माँ के तीखे बाणों को सहना पड़ रहा था, उसके पति आलोक भी कभी–कभी नाराज़ हो जाते थे, ससुर जी के जाने के बाद कहीं न कहीं लोग उसे दोषी मानने लगे थे। कहने को इक्कीसवीं सदी, लेकिन कुछ बातें वहीं ठहरी हुई थीं।

''मैडम जी! अब मलाई मक्खन की दुकान पर ताजा मलाई मक्खन खाइए, आप उँगलियाँ चाटते रह जाइएगा और गर्मियों में यहाँ ठण्डी लस्सी पीजिए, ऐसी लस्सी आपने पी नहीं होगी, टैक्सी ड्राइवर ने बड़े ही उत्साह से कहा। ''ऐसा नहीं है, हमारी दिल्ली की लस्सी का भी जवाब नहीं, अपूर्वा ने भवें चढ़ा लीं। ''अरे मैडम जी नाराज़ मत होइए, चौक की मलाई मक्खन का आनंद उठाइये, मुस्कुराइए आप लखनऊ में हैं। मैडम! ज़िंदगी में बड़े झमेले हैं, नाराज़ हो कर गुस्से से तो उलझने और भी अधिक बढ़ जाती हैं न! ''टैक्सी ड्राइवर अपनी रौ में बोलता जा रहा था।''

अपूर्वा टैक्सी ड्राइवर की सारी बातें सुन रही थी, लेकिन चेहरे का भाव अब भी रूखा ही बना रखा था पर मलाई मक्खन खाते ही उसका गुस्सा मक्खन के साथ घुलने लगा, उसने सचमुच ऐसा मलाई मक्खन कहीं नहीं खाया था। ''मैडम! कैसा लगा हमारे लखनऊ का मलाई मक्खन? टैक्सी ड्राइवर ने चहक कर पूछा?''

अपूर्वा को अच्छा तो बहुत लगा था पर फिर भी उसने बहुत अधिक उत्साह नहीं दिखाया। टैक्सी ड्राइवर ने अगले ही पल अपूर्वा से पूछ लिया ''मैडम! अब आप क्या चौक की गरमा गरम टिक्की और पानी के बताशे, अरे वो आपके दिल्ली वाले गोलगप्पे भी खाएंगी...हमारे लखनऊ जैसा तो...

''हाँ–हाँ तुम्हारे लखनऊ जैसा तो कहीं कुछ होता ही नहीं पर दिल्ली के गोलगप्पे, छोले–भटूरे जैसा भी कहीं नहीं होता... वैसे अब मुझे सीधे होटल छोड़ दो'' अपूर्वा टैक्सी ड्राइवर की बात बीच में काटते हुए कुछ गुस्से से बोल पड़ी।

अरे मैडम फिर गुस्सा...अच्छा आप यहां ठेले से गरमा गरम मोमफली ले लीजिए लहसुन की चटनी के साथ... मैं आपके लिए ले आता हूँ।

लखनऊ जैसा आपको... अपूर्वा ने आंखे तरेर कर उसे देखा... हाँ–हाँ मैडम दिल्ली में भी मिलता होगा, बोलते हुए टैक्सी ड्राइवर हँस पड़ा। अपूर्वा भी टैक्सी के अंदर चेहरा दूसरी ओर किए मुस्कुरा पड़ी।

थोड़ी देर में ही टैक्सी ड्राइवर ने उसे होटल पहुँचा दिया। उतरते हुए अपूर्वा ने आदेश दे दिया।

''अच्छा! कल मेरी मीटिंग 11 बजे ख़त्म हो जाएगी तो कल वो भूलभुलैया ले चलना, बहुत सुना है मैंने इसके विषय में...''

''ठीक है मैडम! मैं हाज़िर रहूँगा, गुड नाइट मैडम! ''टैक्सी ड्राइवर मुस्कुराया और चल पड़ा''

अपूर्वा पीछे गाड़ी में चिंतित हो बैठ गई। वो दिल्ली की मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर के पद पर काम करती थी। लखनऊ एक मीटिंग के सिलसिले में आई हुई थी। दो दिन का प्रोग्राम था। लखनऊ शहर पहली बार आ रही थी, सोचा कि यदि समय मिला तो घूम भी लेगी। लखनऊ शहर के बारे में उसने बहुत सुन रखा था। ...पर अभी तो वो बहुत परेशान थी...लगेज कब कैसे आएगा...तभी टैक्सी ड्राइवर ने कहा ''मैडम!आप चिंता मत कीजिए आ जाएगा आपका सामान, आप चेहरे से परेशान दिख रही हैं।''

होटल में अपने कमरे पर पहुँच कर अपूर्वा ने बैग बेड पर फेंका और सोफे पर पसर गई। चिकन की साड़ी, कुर्ते वाला बैग टेबल पर रखा और साड़ी, कुर्ते को खोल कर देखने लगी, लेकिन उसके चेहरे पर अब भी खुशी का रंग नहीं दिख रहा था। उसने अपने पति आलोक को फोन लगाया

''हैलो! आलोक! कैसे हो? मम्मी जी कैसी हैं?''

''हम सब ठीक हैं...मम्मी जी तुम्हें याद कर रहीं थीं।'' ''हाँ! ताने दे रहीं होगीं'' अपूर्वा का मन कसैला हो गया था। ''नहीं अपूर्वा ऐसा नहीं है...'' आलोक की बात बीच में काटते हुए अपूर्वा बोल पड़ी ''ठीक है आलोक...मैं कल रात मे दिल्ली पहुँच जाऊँगी, 8 बजे की फ्लाइट है, गुड नाइट।''

बेड पर लेटे–लेटे उसे टैक्सी ड्राइवर की बात याद आती रही...मैडम 'उलझनें तो ज़िन्दगी में लगी रहती है, परेशान नहीं होना चाहिए, आप मुस्कुराइए कि आप लखनऊ में हैं' मुस्कुराते हुए अपूर्वा ने लाइट ऑफ कर दी।

सुबह मीटिंग के बाद अपूर्वा को भूलभुलैया ले जाने के लिए टैक्सी ड्राइवर तैयार बैठा था।

''मैडम! अब आप बिना टेंशन के हमारा लखनऊ घूमिए, आज भूलभुलैया तो चलेंगे ही, रास्ते में और भी पर्यटन स्थल हैं, वो भी दिखाऊंगा, आप बैठिए'' टैक्सी ड्राइवर ने बड़े ही जोश के साथ कहा और गाड़ी आई टी चौराहे की तरफ ड्राइव करने लगा। ''...पर्यटन स्थल...इतनी अच्छी हिन्दी !...कहाँ तक पढ़े हो आप...वो मैं आपका नाम भूल गई भैया!'' अपूर्वा की बोली में कौतूहल प्रकट हो रहा था।

''जी मैडम! मेरा नाम मनोज मिश्रा है आपको बताया था...और मैडम हम बीएससी फर्स्ट ईयर तक पढ़े हैं'' गाड़ी चलाते हुए उसने बताया।

''...फिर पढ़ाई क्यों छोड़ दी? मैडम क्या बताएं... बीएससी कर ही रहे थे कि हमारे पिताजी का देहांत एक एक्सीडेंट में हो गया। हम ही बड़े हैं, एक छोटा भाई है माँ ने इसलिए जल्दी शादी करवा दी और हम ड्राइविंग सीख लिए जिससे घर का खर्च चल सके, तीन साल से चला रहे हैं गाड़ी, भाई अभी नॅवीं क्लास में है, हम सोचे थे कि हम भी पढ़ाई पूरी करेंगे लेकिन देखिए भगवान की इच्छा, पिछले साल माँ भी नहीं रही...'' ''ओह...ये तो बहुत बुरा हुआ.. ''अपूर्वा सोच में पड़ गई...''

''जी मैडम ! माँ का जाना तो हम सबको तोड़ गया..''. टैक्सी ड्राइवर भी चुप हो गया। कुछ मिनटों की चुप्पी के बाद वह बोल पड़ा ''मैडम! ये देखिए लखनऊ विश्वविद्यालय...एक ही साल यहाँ पढ़ पाए...और मैडम! यहाँ दर्शन कीजिए हनुमान सेतु मन्दिर का। यहाँ हम सब दर्शन तो करते ही हैं, प्रसाद के लड्डू भी जी भर खाते हैं। बड़े मंगल में तो मेला लग जाता है और उस समय जो पूरी सब्ज़ी मिलती है, न वैसा स्वाद तो आपने चखा ही नहीं होगा।

अपूर्वा टैक्सी ड्राइवर की बात पर अब गुस्सा नहीं हुई बस हँसते हुए बोल पड़ी ''हाँ मनोज भई !आपके लखनऊ की तो हर बात निराली है, लेकिन हमारी दिल्ली भी कम नहीं है।''

टैक्सी ड्राइवर और अपूर्वा दोनों ही हँस पड़े। अपूर्वा के मन के उलझे धागे कुछ सुलझे हुए से प्रतीत हुए।

दस मिनट में अपूर्वा बड़े इमामबाड़े के सामने खड़ी थी। ''मैडम! ये देखिए हमारे लखनऊ की शान बड़ा इमाम बाड़ा, इसको नवाब आसुफद्दौला ने बनवाया था, इसी के अंदर भूलभुलैया है...''

...''तो अब तुम्हीं गाइड बन जाओ मनोज भाई'' अपूर्वा हँसते हुए बोल पड़ी।

''मैडम! मैं गाइड तो बन जाता लेकिन अंदर जो हैं, उन्हें भी कमा लेने दीजिए'' टैक्सी ड्राइवर के चेहरे पर लखनऊ की नज़ाकत साफ झलक रही थी। शाम के पांच बजे रहे थे, अपूर्वा इमाम बाड़ा में भूलभुलैया घूम कर आ चुकी थी। ''मैडम! कैसा लगा आपको'' टैक्सी ड्राइवर की आवाज़ में गर्मजोशी थी। ''मान गए आपके लखनऊ को मनोज भाई'' टैक्सी में बैठते हुए अपूर्वा ने कहा। टैक्सी ड्राइवर 'मनोज भाई' इस संबोधन पर खिल उठा और उसका सम्वाद फिर शुरू हो गया।

''मैडम! भूलभुलैया में आप बिना गाइड के बाहर नहीं निकल सकती, ये ज़िन्दगी भी तो भूलभुलैया ही है और हम सबका गाइड वो ऊपर बैठा है जो हमें रास्ता दिखाता है, हमारी उलझनें सुलझाता है...वो ऊपर वाला गाइड रूप बदल–बदल कर हमारे पास आता है, हम उसे पहचान नहीं

पाते।'' टैक्सी ड्राइवर बोलते हुए अपनी धुन में गाड़ी चला रहा था। अपूर्वा चकित सी उसकी बातें सुन रही थी, अचानक वह बोल पड़ी ''मनोज भाई! तुम्हारे पिता नहीं रहे, तुम्हारी पढ़ाई छूट गई...तुम्हारी माँ नहीं रही... फिर भी तुम कैसे उत्साहित रहते हो?''

टैक्सी ड्राइवर कुछ अचकचा गया ''मैडम वो...ऐसा कुछ मैं ख़ास नहीं कर रहा बस, ज़िंदगी को या तो खुशी खुशी बिताओ या रो–रो कर। खुशी–खुशी बिताएंगे तो सबको खुशी ही बांटेगे...फिर मैडम! वो ऊपर वाले गाइड पर भरोसा रखना चाहिए तो बस वही करता हूं, मेरी माँ ने यही मुझे कहा था...और देखिए अभी एक माह पहले मेरी बेटी आ गई इस दुनिया को महकाने...''

होटल आ चुका था। अपूर्वा विचार मग्न सी अपना सामान लेने होटल के कमरे की ओर चल पड़ी। अपूर्वा का मन विचारों के समंदर में डुबकियाँ लगा रहा था... अपने ही दुःख को मैं कितना बड़ा मान बैठी थी पर दुनिया में कितने सारे लोग कष्ट के बाद भी ज़िंदगी से परेशान नहीं होते, ऊपर वाले पर विश्वास करना नहीं छोड़ते, सचमुच वो ऊपर वाला गाइड तो सबसे बड़ा है वो रास्ता दिखाएगा और वो गाइड मुझे इस टैक्सी ड्राइवर के रूप में मिला। अपूर्वा अपना लगेज ले कर नीचे टैक्सी में आ कर बैठ गई। उसे एयर पोर्ट पहुँचना था। ''मैडम! मैं आपको समय से पहुँचा दूँगा और आप फिर लखनऊ आइए, इस बार आपको अमीनाबाद ले चलूंगा, वहाँ की टिक्की चाट, पाकीज़ा जूस, कुल्फी के क्या कहने।''

होटल आ चुका था। अपूर्वा विचार मग्न सी अपना सामान लेने होटल के कमरे की ओर चल पड़ी। अपूर्वा का मन विचारों के समंदर में डुबकियाँ लगा रहा था... अपने ही दुःख को मैं कितना बड़ा मान बैठी थी पर दुनिया में कितने सारे लोग कष्ट के बाद भी ज़िंदगी से परेशान नहीं होते, ऊपर वाले पर विश्वास करना नहीं छोड़ते, सचमुच वो ऊपर वाला गाइड तो सबसे बड़ा है वो रास्ता दिखाएगा और वो गाइड मुझे इस टैक्सी ड्राइवर के रूप में मिला। अपूर्वा अपना लगेज ले कर नीचे टैक्सी में आ कर बैठ गई। उसे एयर पोर्ट पहुँचना था। ''मैडम! मैं आपको समय से पहुँचा दूँगा और आप फिर लखनऊ आइए, इस बार आपको अमीनाबाद ले चलूंगा, वहाँ की टिक्की चाट, पाकीज़ा जूस, कुल्फी के क्या कहने।''

''हाँ ज़रूर आऊंगी आख़िर तुमसे अच्छा गाइड और कहाँ मिलेगा...पर तुम अपनी पढ़ाई पूरी करना।'' टैक्सी ड्राइवर और अपूर्वा के चेहरे पर मुस्कान खिल गई। टैक्सी ड्राइवर अपूर्वा के मुस्कुराते चेहरे को शीशे में देख कर बोल पड़ा ''देखा मैडम! लखनऊ का असर''..

''दिल वालों की दिल्ली का असर भी कम नहीं'' अपूर्वा और टैक्सी ड्राइवर दोनो हंस पड़े। अपूर्वा रात ग्यारह बजे दिल्ली अपने घर पहुँच गई थी। उसके पति आलोक ने मुस्कुराते हुए दरवाज़ा खोला और पूछा ''कैसा रहा लखनऊ का सफ़र।''

''बहुत बढ़िया'' अपूर्वा भी मुस्कुरा दी, तभी भीतर के कमरे से सासू माँ की कड़क आवाज़ आई ''अपूर्वा! आ गई... खाना ढका रखा है टेबल पर, हाथ मुँह धो कर खाना, आजकल की लड़कियों को कितना समझाना पड़ता है।''

आज अपूर्वा को उनकी बात पर गुस्सा नहीं आ रहा था। वह अंदर सासू माँ के पास गई और उनके पैर छूकर उनके हाथों में लखनऊ से ख़रीदी चिकन की साड़ी रख दी।

''क्यों लाई ये सब, क्या ज़रूरत है अब हमको, जाओ, जाओ खाना खाओ'' सासू माँ की आवाज़ में वही ठसक थी लेकिन आँखों में नमी भी थी जिसे अपूर्वा ने महसूस कर लिया था, उसके होठों पर भी सजल मुस्कान खिल गई थी। शायद लखनऊ की मुस्कान और उस टैक्सी ड्राइवर की बात का असर था जो अपूर्वा के जीवन को गाइड कर रही थी। ◆

पता : सी–204, इनटाप हाइटस, सेक्टर–19, अरौली, नवी मुंबई–400708

मो. : 9769643984

स्टेशन

❑ रेणुका अस्थाना

कोहरे के धुएँ से ढके स्टेशन पर न कहीं कोई शोर था, न आवाज। न दुकानों की व्यस्तता न गाड़ियों की गड़गड़ाहट। चारों ओर बस धुएँ से भरी चुप्पी फैली थी। दुकानें बंद थीं। चाय की गुमटियां ठंडी पड़ी थीं और प्लेटफार्म की सीलिंग के लोहे पर बैठे कबूतर, मैना अपने पंखों में सिमटे बंद पड़े थे। जाग रहा था बस स्टेशन, धुएँ में लिपटे अपने यात्रियों को समेटे, प्लेटफार्म के बाहर खुले में जलते अलाव को घेर कर बैठे लोगों के बीच कहानियां, राजनीति की बहसें और कुछ नग्न किस्सों की पोटली बांधता, कितने ही पाप पुण्य को अपने में समेटता।

स्टेशन को इस पार से उस पार देखता सुकांत कभी टहलता, तो कभी एक बंद दुकान से पीठ टिकाकर खड़ा हो जाता और कभी उस अलाव को देखने लगता, जहां कहानियाँ और ठहाके अभी भी चल रहे हैं। चार घंटे की लेट ट्रेन का समय बढ़ता ही जा रहा था .... ऊब कर वह मोबाइल खोल कर कुशीनगर से आई एक रिपोर्ट पढ़ने लगा तभी किसी ट्रेन की सीटी बजी, तेज गरजती सी। कुछ लोग चौंक कर उठ गए, कुछ ने अपना सामान देखा कि शायद उनकी ही ट्रेन हो पर दीवार के सहारे टिक कर सोया एक कबूतर घबड़ा कर फड़फड़ाता नीचे आ गिरा। सुकान्त ने पास जाकर उसे धीरे से छुआ सहलाया, पर वह हिला ही नहीं। गोल आँखें धीरे–धीरे हिलाता चुप सा पड़ा था। सुकान्त ने जेब से रुमाल निकाल उसे ढँक दिया। दुबक गया वह अपने पंख सिकोड़ कर आस–पास बैठे लोग भी आकर खड़े हो गए। कोई उसकी उठती गिरती सांस को देख कर कुछ कहता तो कोई उसकी एक तरफ झुकी गर्दन को। कोई कहता "गले की हड्डी टूट गई है" तो कोई कहता "ठंड से अकड़ गया है बिचारा।" एक ने तो देख कर कहा "ये मरने वाला है... सुकान्त ने कबूतर को उठा कर बगल की केबिन के पास पड़ी एक कुर्सी के नीचे रख दिया जिस पर मोटा सा आदमी मुंह खोले खर्राटे ले रहा था।''

घड़ी देखता है, शाम के चार बज रहे थे। सुबह दस बजे आने वाली ट्रेन का अभी भी कोई पता नहीं था। कोट की जेब से सिगरेट की डिब्बी निकालकर पढ़ता है "सिगरेट इज इंज्युरिअस

टू हेल्थ"…. हँसता है "तीस वर्षों से यही देख रहा हूँ" क्या इस लिखे की कोई उपयोगिता सरकार या हमारे लिए है?" सिगरेट जला कर वह एक लकड़ी के बकस पर बैठ गया और देखने लगा धुएँ के नीचे सिमटे लोगों को, आकाश के नीचे जलते अलाव को, पंख फड़फड़ा कर गिरे कबूतर को और खर्राटे लेते मोटे आदमी को। ये सब कुछ उसे सूजा, रजा जैसे चित्रकारों के उन करोड़ों के चित्रों से लग रहे थे जिनके रंग और रेखाओं के पीछे अक्सर जीवन की सुंदरता के साथ जीवन का कड़वा सच भी छिपा होता है, ऐसी ही कोई प्रतीक्षा छिपी होती है या अलाव के पास बैठे लोगों का अट्टहास…

ऊँह! क्या सोच रहा मैं…ये सब… पर ये बिकती कितनी महंगी हैं। लाखों करोड़ों में! कई वर्षों पहले तैय्यब मेहता की "भस्मासुर" पेंटिंग सात या आठ करोड़ के आक्शन में बिकी थी। उफ्फ! सात करोड़… आतंक और बिखराव से जूझने वाले देश के एक कलाकार की कृति की कीमत सात करोड़? थूक निगल कर सुकान्त ने सिगरेट को फेंक दिया। पैसा कहीं–कहीं कितना सस्ता होता है…लकड़ी के बकस से उठकर वह दीवार की लाइन से होता प्लेटफार्म की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। निरुद्देश्य। बस उस पार जाने को। सीढ़ियाँ चढ़ते उसकी आँखों में तैय्यब मेहता के भस्मासुर का काल्पनिक चित्र डूबता उभरता रहा, जिसकी कीमत सात कारोड़ रुपये थी।

कोहरे के धुएँ से ढँके स्टेशन पर न कहीं कोई शोर था न आवाज़। न दुकानों की व्यस्तता, न गाड़ियों की गड़गड़ाहट। चारों ओर बस धुएँ से भरी चुप्पी फैली थी। दुकानें बंद थीं। चाय की गुमटियां ठंडी पड़ी थीं और प्लेटफार्म की सीलिंग के लोहे पर बैठे कबूतर, मैना अपने पंखों में सिमटे बंद पड़े थे। जाग रहा था बस स्टेशन, धुएँ में लिपटे अपने यात्रियों को समेटे। प्लेटफार्म के बाहर खुले में जलते अलाव को घेर कर बैठे लोगों के बीच कहानियां, राजनीति की बहसें और कुछ नग्न किस्सों की पोटली बांधता। कितने ही पाप पुण्य को अपने में समेटता।

सीढ़ियाँ उतर कर सुकान्त दूसरे प्लेटफार्म की एक गुमटी के पास खड़ा हो गया, जिसके बाहर सिकड़ी में मद्धम आंच अभी भी सुलग रही थी और भीतर एक आदमी बाल ठीक करता अपनी जैकेट पहन रहा था। उस आदमी को एक बार देख सुकान्त ने अपने दोनों हाथ आंच के ऊपर टांग दिए। "क्या बात है भाई…पैसेंजर सारे उधर और खुली गुमटी इधर?"

"पहले इधर की ट्रेन वाले इधर ही थे, बाद में सब एक जगह इकट्ठे हो गए साहब।''

"चाय लेंगे?" गुमटी बंद करता चाय वाला ठहर गया।

"इस ठंडी आग में बन सकेगी?"

''बनाओ। थोड़ी कड़ी बनाना।" कह कर सुकान्त कोट की जेब में हाथ डाले सामने की बेंच पर बैठ गया। सोचता है, चलो इसी बहाने थोड़ा समय और बीत जाएगा।

कुहरे का धुआँ किसी काले दैत्य सा धीरे–धीरे बढ़ रहा था। सिगड़ी को हवा करता चाय वाला जल्दी से घर पहुँचने की सोच रहा था तो सुकान्त अपनी ट्रेन को। मन ही मन दोनों ने ईश्वर और कुहाँसे को कोसा। गालियाँ भी दीं पर चाय वाला खुश भी था कि जाते–जाते दस रुपये उसे और मिल जाएगा। आज दस रुपए की खुशी ने उसे गायक बना दिया। सिगड़ी पर केतली चढ़ा कर पंखा करते उसने अपनी रागिनी छेड़ी…हंसि–हंसि पनवां खिअउले बेइमनवां…कि अपना बसे ला परदेस। कोरी रे चुनरिया में…दगिया लगाई दिहलें मारे हैं करेजवा में…

चा…चा…चा…य…

चौय…काँपती आवाज़ के दुहराव ने गीत के सारे तार खटाक से तोड़ दिए। झुंझला गया वह। के…के है…

''चाय …काँपती आवाज़ चिढ़ी थी।''

दोनों ने ही उस छाया को देखा था, जिसने ढीली–ढाली मैली सी पैंट और शर्ट पहन रखी थी। शायद बिना बटन की या बहुत ही ढीली जिसे उसने अपने दोनों हाथों से थामे रखा था। उसका तीन हिस्सा चेहरा उलझे बिखरे बालों से ढंका था। चाय वाले ने उसे देख बहुत दुलार से पुकारा "अ रे रे रे रे बिटिया आई है…

"बैठ...बैठ...अभी चाय पिलाते हैं ना... चाय।" छाया अपना सर इधर से उधर हिलाती काँप रही थी। "अभी चढ़ाया है बिटिया। बस बनी और तुम्हें मिली..."

"तब तक बैठ जा..." चाय वाला बोलता जा रहा था और पानी में चीनी अदरक डालता कुहरे को भी देख रहा था, जिसका कहीं अंत दिख ही नहीं रहा था। लड़की वैसे ही खड़ी थी... चेहरे पर बाल बिखराए काँपती हुई। आवाज़ से सुकान्त ने पहचाना, वह 13–14 साल की एक छोटी लड़की थी। कुछ गंदे से रंग की। पता नहीं यह रंग कुहरे के कारण था या स्टेशन के। चाय वाले ने गिलास में लड़की को चाय के साथ एक पाव पकड़ाया। हंस कर बाल पीछे करते उसने एक हाथ में गिलास दूसरे में पाव पकड़ लिया, पैंट नीचे चली गई। छोटी सी उलझी आवाज़ हुई। सुकान्त ने आँख गड़ा कर उधर देखा जहां उतरी पैंट से बेपरवाह लड़की चाय में पाव डुबा कर खाती सुड़प... सुड़प करती पीने में लगी हुई थी। आँखें फेर सुकान्त बेंच के पीछे कूँ...कूँ की ठंडी आवाज़ निकालते छोटे–छोटे कुत्ते के बच्चों को अपनी माँ के सीने से चिपके हुए देखा था। फिर लड़की को देखा जो सुड़प... सुड़प कर चाय पीने में व्यस्त थी। हंस दिया सुकान्त, चाय वाला भी। दोपहर से उड़ते कुहरे का रंग शाम के रंग से मिलकर अब और गहरा स्याह होता जा रहा था। स्टेशन डूब रहा था। कूँ...कूँ करते कुत्ते के बच्चे, सुड़प–सुड़प करती लड़की, गुमटी समेटता चाय वाला और उस पार जाती हुई सीढ़ियाँ सब डूब रहे थे....सहम गया वह। हमेशा कुहरे को प्रकृति की सुंदरता मानने वाला और कॉफी के साथ अपनी कल्पना के रंग में रंगने वाले सुकान्त को आज वह किसी दैत्य सा लग रहा था जो निगल रहा था स्टेशन के साथ उसके कुरूप सच को भी। चाय पानी हो रही थी। "जल्दी करिए साहब, प्लेटफारम खाली है।" "अब आग भी बुझ ही गई है..." कहते चाय वाले ने जर्सी में हाथ डाला ही था कि बाहर काँच के गिलास की टूट कर बिखरने की आवाज़ आई साथ ही लड़की की घुटी–घुटी घिसटती सी आवाज़ भी। आँख गड़ा कर सुकान्त, कुहरे से छन कर आती, स्टेशन के बल्ब के धुंधले प्रकाश में चाय वाले को देखने लगा, जबकि चाय वाले ने चाबी का गुच्छा उठा कर गुमटी में ही अपनी सांस खींच ली। उसकी आँखें गुमटी के कोने पर एक अंधे सी टिकी रहीं क्यूंकि वह जानता था इस अंधेरे का सच... इन जैसे बच्चों के जन्म और विनाश की कहानी...पर असहाय था। हारा हुआ सा... लज्जित... अपने साधारणपन से। अपने छोटेपन से। कितनी ही बार अपनी नंगी आँखों से कई दीवारें ढहती देखा था उसने। लज्जित भी हुआ पर बेबस मनुष्य होने के कलंक में डूबा कुछ कर नहीं पाया। नहीं कर पाया अपनी छोटी सी जान के लिए जो मूल्यवान भी है और मूल्यहीन भी।

सुकान्त तो सुन्न सा बैठा था। घिसटती सरसराहट और घुटी–घुटी अबोध आवाज़ को सुनता। कुछ समझता और कुछ न समझता। स्टेशन पूरी तरह से अंधेरे और कुहरे के धुएँ में डूब गया था। नींद में अधखुली आँख से बस स्टेशन के बल्ब जल रहे थे। सुकान्त ने चाय वाले को पैसे पकड़ाए। हाथ ने हाथ छुआ और अंधेरे में गुमटी में ताला लगा दोनों सीढ़ियाँ चढ़ने लगे अपने–अपने में उलझे।... "ऐसा काहे होता है साहब..."

उत्तर कोई नहीं और दूसरा प्रश्न फिर साथ चलने लगा "ये कौन सा जुग है कि पागल, असहाय भी नहीं जी पाते... और हम तो पातकी मुंह सिए जीने को मजबूर रहते हैं.."

"काहे उनके पाँच हाथ से हमारे सौ हाथ हमेशा हार जाते हैं?"

"किस युग की बात करें..." सुकान्त लड़खड़ा गया। "हर युग कहीं न कहीं से अंधा और बहरा ही रहा है... जिसमें या तो डरे हुए जिए या बिके हुए। जो सही करने चला वह अकेला ही रहा इनकी भीड़ में। मुट्ठी भर लोगों के रूप में...पर आश्चर्य! हर युग इन्हीं मुट्ठी भर लोगों की पीठ पर सवार होकर चला है..."एक भद्दी सी गाली उछालता है सुकान्त। दोनों सीढ़ियों से ऊपर आकर अलग–अलग दिशाओं में मुड़ गए, सुकान्त एक नंबर प्लेटफार्म के लिए और चाय वाला बाहर जाने को। दोनों के भीतर चुभ रहा था धुंध में घिसटता एक विक्षिप्त बच्चे का चित्र और छनछना कर टूटता गिलास। ◆

पता : भिवाड़ी, राजस्थान
मो. : 9982448126

स्वयमेव जयते

❑ पूजा गुप्ता

जाड़े की गुनगुनी धूप फैलते–फैलते सुधा के घुटनों को तपिश देती हुई दीवान के पैताने पर पसर रही थी। कलम चलाते–चलाते सुधा कुछ रुक कर धूप–छांव का खेल देखने लगी। पौधों के परे जंगले के ऊपर, जहां छोटा–सा तुलसी का चौरा रखा था, महरी का धोया फर्श अभी गीला था। पानी में मिलकर सूरज के रंग इंद्रधनुषी होते चले थे। घर के आंगन में आम का पेड़ है। उसमें छोटी–छोटी अमिया लटकी हुई हैं, साथ में बिजली का खंबा है। दीवार के एक तरफ गमले में गेंदे के फूल ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे सोना बरस रहा है। कुछ ही दूर दूसरे गमलों में ढेर से कैक्टस और मनीप्लांट सुशोभित हो रहे हैं। बिजली के खंबे पर एक गिलहरी बार–बार चढ़ती–उतरती अठखेलियाँ कर रही है। सुधा का दिल किया सारा कामकाज छोड़कर वहीं खेल देखती रहे। आज इतने दिनों बाद उन्हें इस तरह आराम से बैठना नसीब हुआ था। ठीक ही तो है। उन्होंने मन ही मन सोचा अपना आराम, अपने काम की तरह इंसान को स्वयं ही निकालना पड़ता है, वरना तो रिश्तों का चक्रव्यूह भेधते–भेधते उम्र कब हाथ से निकल गई, पता ही नहीं चला। आज से 40 बरस पहले वह दिन में 12 बजे ऐसे बैठने का सोच भी सकती थी क्या भला?

''सुधा! एक कप चाय भिजवाना।'' प्रबोध बाबू शतरंज की बिसात पर चश्मा गड़ाए चिल्लाते। ''मां.. मां, मेरी लाल कमीज़ कहां रखी है?'' बड़ा बेटा अनमोल आंख के आगे रखी चीज़ भी नहीं देख पाता था। ''बहू, कितनी बार कहा तुमसे कि मेरे ठाकुर जी को सुबह–सुबह नहला दिया करो लेकिन तुम हो कि..!'' क्षीणकाया, क्षीणदृष्टि कहां देख पाती कि ठाकुर जी धुले–धुलाए आसन पर विराजमान, ताजे पुष्पों और कच्चे दूध का अर्ध्य लिए उनकी अर्चना की बांट जोह रहे हैं.... और इन सब के बीच सुधा... उन्हें लगता जैसे संसार की मधुरतम ध्वनियां उनके घर–आंगन में गूंज रही हैं। बेटियां छोटी थीं, इसलिए चोटी गूंथने से लेकर गुड्डे–गुड़िया के ब्याह रचाने तक की ज़िम्मेदारी उनकी मां की थी पर सुधा के पास सबके लिए समय था। वह उत्तर प्रदेश के एक संपन्न जमींदार परिवार की बेटी थी। बचपन से यही देखा–जाना था कि 'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते' अर्थात घर को घर नहीं कहा जाता, गृहिणी ही घर है, यह कहा जाता है। यही उनकी पूंजी थी कि घर का छोटे से छोटा, बड़े से बड़ा जीव उन पर निर्भर रहे। उन्हें अपना महत्व तभी संपूर्ण जान पड़ता, जब देखती कि मायके के

बुलावे पर प्रबोध बाबू परेशान हो गए हैं और जाने को मना न करने पर भी उनका हृदय उन्हें रोकने को तैयार खड़ा है। बच्चों की पढ़ाई, राशन–पानी की चिंता, तीज–त्यौहार, नाते–रिश्तों का लेन–देन इन सब से थोड़ा उबरी तो पाया कि प्रौढ़ावस्था दरवाज़े पर कब की दस्तक दे चुकी है। बालों में चांदी के तार जब मेहंदी की लुभावनी परतों तले ना दब सके, तो सुधा ने थकहार कर उन्हें यूं ही छोड़ दिया। उम्र की ढलती सांझ में इन्हीं तारों की चांदनी ने उन्हें अकूत गरिमा दे दी थी।

फिर समय ने करवट बदली। प्रबोध बाबू ने अचानक वकालत छोड़ राजनीति के दांवपेंच आज़माने की ठानी। भाग्य ने साथ दिया और वह अपने क्षेत्र के कॉरपोरेटर बन गए। सुधा का घर अपनों के संग–संग दीन–दुनिया के दावेदारों से भी भरा रहता। वे सोचती, 'ईश्वर ने पति के साथ उनका ओहदा भी ऊंचा उठा दिया। पति के राजनैतिक पद की महिमा उनके बच्चों के भाग्य निर्माण में भी सहायक बनी। हालांकि वे स्वयं मेधावी थे, किंतु मेधा और पहुंच का अटूट जोड़ उन्हें वह सब दिलवा गया जो स्वयं प्रबोध बाबू शायद उन्हें कभी नहीं दिलवा पाते। बेटियों के लिए संभ्रांत उच्च शिक्षित वर, शहर के बेहतरीन हिस्से में मकान और अपने क्षेत्र के महामहिमों में प्रमुख स्थान। सुधा को लगता शायद पूर्वजन्म के पुण्य उन्हें ईश्वर इस रूप में नवाज़ रहा है। प्रबोध बाबू के साथ जब वे कहीं उद्घाटन समारोह में कैंची से रिबन काटतीं या किसी शिलान्यास को संपूर्ण करतीं तो उन्हें बेहद संकोच होता। ''अनमोल की मां, अब तुम थोड़ा अपने आप पर ध्यान दो, पब्लिक फिगर हो गई हो।'' प्रबोध बाबू गर्वमिश्रित हंसी हंसते तो सुधा अबोध तरुणी की भांति लजा जातीं। पब्लिक नहीं, जीवन भर प्राइवेट फिगर बनने में ही संलग्न रही थीं वे। कहां से लाती वह नकली चकाचौंध, तड़क–भड़क जो प्रबोध बाबू के राजनैतिक जीवन को एक हाला की भांति घेरे हुए थी। वे आज भी वही पुरानी 'अनमोल की मां' और 'प्रबोध की बहू' थीं, जिनके हाथ की सिल पर पिसी पुदीने की चटनी उनका गोवानी खानसामा भी चटखारे ले–लेकर खाता था, जिनके घर की दीवारें उन्हीं की बनाई कलाकृतियों से सुशोभित थीं और क्यारियों के फूल उन्हीं के हाथों महकते थे। पर स्वयं सुधा भी जानती थीं कि कुछ मील के पत्थर ऐसे भी होते हैं, जिन पर से गुज़र कर वापस लौटना संभव नहीं होता।

बच्चे पति वे सब जिनके रोम–रोम को सींचने में वे स्वयं होम होती चली गईं थीं, सब उनकी दुनिया के अतिथि मात्र थे। बच्चों को संकोच होता था अपनी 'ओल्ड फैशंड' मां को अपनी बातें बताते और पति सुबह 6 बजे से जो ऑफिस में बैठते, तो लंच–डिनर सब वहीं लद–लद कर जाता रहता। वे कुशल प्रबंधक की भांति सब देखती रहतीं कि कहीं कोई त्रुटि न रह जाए, पर त्रुटियां गिनने वाला था ही कौन?

एक बार फिर समय ने सुधा को थोड़ा सा गुदगुदाया था, जब बच्चों की शादी हुई। बेटियां तो प्रबोध बाबू ने जल्दी ही निबटा दीं, जिससे कि अपने राजनैतिक काल की हल्दी उनके भाग्य पर भी पीतवर्णी सोना बरसाती रहे। हां, बड़े बेटे अनमोल के लिए उन्होंने अवश्य वक्त लगाया, देखभाल कर अपनी कुल–बिरादरी की सबसे श्रेष्ठ कन्या उसके लिए छांट कर लाए थे। वे स्वयं तो यही मानते थे। सुधा ने तो केवल स्वीकृति की मुहर लगाई थी और हमेशा की तरह अपने को विवाह के सरंजाम में डुबो दिया था। प्रबोध बाबू को मंडप द्वार पर शुभकामनाएं स्वीकारते हुए, अपनी गृहलक्ष्मी की महिमा पर गर्व हो रहा था। सच है पुरुष का भाग्य स्त्री के भाग्य से ही द्विगुणित हो पाता है और बहू के आते ही सुधा ने उसे सिर–आंखों पर ले लिया था। किंतु धीरे–धीरे उन्हें लगता जैसे बहू उनके लाड़चाव से कुछ खीजी सी रहती है। कहती कुछ नहीं, पर परोक्ष भाव से उन्हें लगता कि शायद उन्हें अपने पर अंकुश लगाना चाहिए। जिस रुनझुन की अपेक्षा उन्हें बहू रीता से है, वह शायद उसकी 'प्राइवेसी' भ्रष्ट किए दे रही है। फिर उन्होंने अपनी दिनचर्या का रुख़ मोड़ दिया था।

समय कहां ठहरता है, तकिए को सिर तले सरकाते हुए वे अतीत से वर्तमान में लौट आयीं। अपना ब्याह, फिर बच्चे, फिर बच्चों के बच्चे.. नीलिमा और अनुज जुड़वाँ पोती–पोते के जन्म पर तो जैसे बौरा ही गए थे सुधा और प्रबोध। जश्न, बधाई, नाच–गाना इन सारी तैयारियों में सुधा जल्दबाज़ी में अपने पैर की हड्डी तुड़वा बैठी थीं। उन्हें बेहद झुंझलाहट हुई थी। मेहमानों से भरा घर, रिश्ते की ताइयां, चाचियां इतने बरस बाद कुआं पूजन, बहू का सूतक और इधर लाचार वे, पर अपनी परवाह न कर दिनभर नौकरों को इधर–उधर नचाती रहतीं और फिर छोटे आकाश ने उन्हें जो बात बताई, उसने तो रीढ़ की हड्डी ही हिला डाली थी। अपने साथ मेडिकल कॉलेज में पढ़ रही पारसी लड़की पेरीन से वह कोर्ट मैरिज करने जा रहा था। वह सब भी इस डंके पर कि प्रबोध बाबू अपनी हठधर्मिता के कारण उसे यह फैसला

लेने पर मजबूर कर रहे हैं। सुधा को पहली बार अपने जीवन से शिकायत हुई थी। कहां, क्या ग़लती हुई उनसे, जो संतान के मुख से ऐसे असंयमित बोल उन्हें सुनने पड़ रहे हैं। फिर वे एकदम मूकदर्शक बनी देखती रहीं। आकाश की ज़िद, पति का गुस्सा, बड़े बेटे की तटस्थता उन्हें लगा कि ऐसे रिश्ते का चौपट हो जाना ही अच्छा है। जिस रोज़ आकाश ने बंगाल के लिए अपना सामान बांधा, उनकी आंखें पहली बार क्रोध में लाल हुई थीं, आशीर्वाद के रूप में केवल यही निकला, ''ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दे।''

इस घटना के बाद उन्हें घर के कार्यकलाप उतना नहीं लुभा पाते थे। किंतु जीवन की चक्की जिस लगन से इतने बरस पीसी थी, उसे निर्ममता से छोड़ पाना भी तो संभव नहीं था। प्रबोध बाबू की सेहत भी अब बेलगाम घोड़े जैसी बिदकने लगी थी। वर्षों की नियमबद्धता, खान–पान का संयम, सब एक झटके में विलय होने को तत्पर था। सुधा साये की तरह पथ्य लेकर पीछे–पीछे चलती रहती, जैसे वार्धक्य की अंतिम सीमा तक उन्हें जाने ही ना देंगी, किंतु यम के दूत उनसे कहीं अधिक चौकन्ने और तत्पर सिद्ध हुए। सुबह की सैर के बाद छाती का मामूली सा दर्द कब प्राणघाती बन बैठा, सुधा जान ही नहीं पाई। जब आंख खुली तो देखा कि सारे बंधन त्याग उनका जीवन मित्र राह पथिक बना पाथेय मांग रहा है। कब नाते–रिश्तेदारों ने सामाजिक कर्म निबटाए, बेटे–बेटियों ने शोक मनाया, उन्हें ढांढ़स बंधाया, सुधा का पथराया मर्म कोई जान ही न पाया। जब चेतना लौटी, तो लगा जैसे उनका रचा–बसा घर कहीं दूर शून्य के अंधकार में विलुप्त होता जा रहा है। सभी चिरपरिचित चेहरे जैसे संवेदना का नकाब ओढ़े, उन्हें और उनके संसार को लील जाने को तत्पर हैं। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने आप को संभाला और स्वयं को बच्चों के सामने खड़ा किया।

''अनमोल, अनु, आकाश... मैं चाहती हूं कि तुम्हारे पिता के बैंक में जो संपत्ति है, उसका वाजिब हिस्सा तुम लोग आपस में बांट लो, एक छोटी रकम को छोड़कर। आख़िर, अब तुम्हारे पिता के बाद थोड़ा बहुत आश्रय मुझे भी तो...?'' ''ओफ्फो मां...,'' बड़े बेटे अनमोल ने उनकी बात बीच में ही काट दी थी। 'आप तो ऐसे कह रही हैं, मानो हमें आपकी कोई परवाह ही नहीं। पापा नहीं है, तो क्या हम आपको ऐसे ही छोड़ देंगे?'' सुधा को ऐसे उत्तर की उम्मीद नहीं थी। वह डबडबायी आंखों से उसे ताकने लगी। ''हां मां! भैया ठीक ही तो कहते हैं,'' छोटी बेटी अनु ने कमान संभाली।

''आख़िर हमारी भी कोई ज़िम्मेदारी है। आप क्यों यहां बनारस में अकेली पड़े रहना चाहती हैं? भैया दिल्ली में अकेले हैं, रीता भाभी ने भी नया–नया बुटीक खोला है, उन्हें भी मदद की ज़रूरत है। आपका भी दिल लगा रहेगा।''

''नहीं–नहीं बेटा, अभी तो उनकी चिता की राख भी ठंडी नहीं हुई और मैं बनारस छोड़कर चल दूं? अभी तो उनकी आत्मा यहीं कहीं भटक रही है बेटा... मैं उनकी पूजा, उनकी अर्चना, यह घर बार कैसे सूना छोड़ दूं?'' ''लेकिन मां, हम भी तो अपना घर बार यहां शिफ्ट नहीं कर सकते। नौकरी, बच्चों के स्कूल, यहां अब हमारा बसना कैसे हो सकेगा?''

सुधा ने अपने उमड़ते आंसुओं को पीछे धकेला और मज़बूती से अपना जवाब सुनाया। ''तुम्हारी मां अपने बचाव के लिए तुम्हें उजड़ने को कभी नहीं कहेगी बेटे। तुम्हें तुम्हारे कामकाज से जब भी थकान हो, यहां का रुख कर सकते हो। यह घर बांहें फैलाए तुम्हें अपने आंचल में समेट लेगा पर मैं इस चौखट को नहीं छोड़ सकती।'' सब चुप्पी साध चुके थे। उस चुप के भारीपन को झेलना सुधा के लिए असहनीय हो गया, तो वे फिर वहां से उठकर पूजा घर में जा बैठी। पीछे से आती खुसुर–फुसुर उन्हें गली में उठती आवाज़ों से अलग नहीं लग रही थीं। आज उनके ठाकुर जी के साथ प्रबोध बाबू की मुस्कुराती तस्वीर भी लगी थी। ''कहां चले गए आप?'' सुधा ने अपना सारा दर्द आंसू में बहा डाला..।

''चार–चार रत्न मेरी झोली में डाले थे आपने। आज मेरे साथ खड़े होने के लिए किसी के पास समय नहीं। मैं कैसे आपकी यादों का भंडार खाली कर जाऊं? मैं... मैं तो खाली, अधूरी, बेसहारा हो जाऊंगी... आप यहीं तो हैं, उन सबको दिखाई क्यों नहीं देते?'' संध्या दीप जले, 'रमणीय विला' रोशन होकर जगमग करने लगा, किंतु सुधा को लगा जैसे सब अंधकार में विलीन होता जा रहा है। कब उनकी बूढ़ी नौकरानी देवरती उनकी बगल में आ बैठी, उन्हें पता ही नहीं चला। ''काहे रोवत हो बिटिया रानी?'' देवरती की आवाज़ उन्हें गूंजती सी लगी थी, ''जौन चले गए औका तोहार आंसू वापस ना लाइब।'' ''मैं क्या करूं देवरती?'' सुधा अपने को रोक न पाई, ''सब कुछ हाथ से फिसलता नज़र आता है।'' ''कोई ना कोई हल ज़रूर निकलवै करी'',

देवरती उनका माथा सहलाने लगी। दिनों पर हफ्ते, हफ्तों पर महीने चढ़ते चले गए। बूढ़ा सा कुम्हलाया 'रमणीय विला' सुधा और देवरती को समेटे सिहरा सा खड़ा रहा। फिर एक दिन बंगाल से मिले एक तार से शांति भंग हुई। सुधा के छोटे बेटे ने अचानक 10 लाख रुपए की मांग की थी। उसके अनुसार उसका भी जायदाद में बड़ा हिस्सा था। बेटी को मेडिकल करवाने के लिए उसे पैसे चाहिए ही थे। बौराई सी सुधा ने तुरंत बड़े बेटे को बुलावा भेजा, पर अनमोल ने जो कहा उसकी उन्हें कतई उम्मीद नहीं थी।

''अब मां देर–सबेर तो ये सवाल उठेंगे ही। पापा को चाहिए था कि समय रहते ही अपनी विल बनवा लेते। सीने में दर्द की शिकायत तो उन्हें कब से थी।'' ''लेकिन बेटा, उन्हें क्या पता था ईश्वर इस तरह निर्ममता से...?'' ''वही तो कह रहा हूं मैं,'' अनमोल की झल्लाहट साफ नज़र आ रही थी, ''समझदार वही है, जो हर स्थिति के लिए तैयार रहे। अब आकाश ने पैसे मांगे भी, तो क्या ग़लत किया? आज उसे ज़रूरत है, कल मुझे भी हो सकती है। बच्चों को आजकल पेट काटकर पढ़ाना पड़ता है। आप क्या जाने मां, आपको तो यह महल सहेजना ज़्यादा ज़रूरी है। आपको लगता है कि हमें कोई ज़रूरत नहीं। सब ऐश में है, लेकिन ऐसा है नहीं।''

''तो क्या यह घर बेचने से तुम्हारी ज़रूरतें हल हो जाएंगी?'' सुधा ने कब कंपकपाते स्वर में पूछा। ''हल नहीं, तो टल तो जाएंगी ही। आपको क्या? लिख दीजिए आकाश को, कुछ नहीं हो सकता। अपने आप भुगतेगा।'' सुधा को लगा कहीं कोई गलती अवश्य हुई है। नहीं तो आज इतने साल की मेहनत यूं व्यर्थ नहीं जा सकती थी। उनके बच्चों की बातें यूं अजनबी सी नहीं लग सकती थी। सुबह देवरती आई, तो उन्हें बिस्तर में लेटा पाया। ''का हुआ भौजी? काहे अपन मिजाज़ ख़राब कर लेई?''

''कुछ नहीं देवरती सब किस्मत का फेर है। मेरी गोद के खेले आज मुझे दुनियादारी सिखाने पर तुले हैं। उन्हें लगता है मैं उनकी जायदाद पर नज़र रखे हूं। मैं कहां जाऊं देवरती?''

''अरे जाना कहां है?'' देवरती ने खनकती आवाज़ में उन्हें झिड़क दिया। ''सच कहूं भौजी, ई कोख के जाए सब खून–पानी कर लिए रहिन। तो हमार बचवा है, ससुर के नाती हमार दो बिग्घे पै आंख गड़ात रही। हम साफ कह दीन, आंख फोड़ के हाथ में दे देइव। हमऊ ऐके बाप से ना मांगे ओ ज़मीन। हमार दहेज में आत रही। दौ बखत की सब्ज़ी–भाजी भी हुई जाई, तो बुरे बख़त में हाथ ना पसारना परी। ओका पीने–पिलाने पे बारने को हमार तनखा काफी ना पड़ रही।''

सुधा टुकुर–टुकुर उसे देखती रह गई, ''तूने उसका मुकाबला कैसे किया री? वह तो एकदम जंगली हो जाता है।'' ''तो हम भी जंगली की मां है भौजी,'' देवरती ने दांत निपोरे, मरती मर जाइब पर जीते जी किसी को अपना आसरा ना मिटाने देइब। सुधा को जैसे बोधज्ञान हो आया। उनसे अच्छी तो यह अनपढ़–गंवार देवरती ही निकली। सीना ठोंक कर अपनी औलाद को जता तो दिया कि उसका हक़ मारना आसान नहीं और सफेदपोशी के नकाब तले उनसे यह भी ना हुआ कि अपने बेटे को झिंझोड़ कर पूछती कि पिछले एक साल से उसने मां की कितनी खोज–ख़बर ली। क्यों ना कहा उससे कि अभी इतनी अशक्त नहीं हुई हैं वे कि उनके निर्देशों पर अपने जीवन की इबारत लिखे। उनका जीवनसाथी उनके हाथ में काफी कुछ सौंप गया है, जो उनके जीवन की ढाल बन सके। किसी अनमोल या आकाश से डरने या घबराने की ज़रूरत नहीं उन्हें। अपने पैरों पर खड़े होकर स्वयं अपनी जीवन नैया खेनी होगी उन्हें।

धूप ढलने को आई थी। सुधा ने देखा, कलम काफी देर से शिथिल पड़ी है। कागज़ों का पुलिंदा बिखरने को है। उठ कर बैठते हुए उन्होंने फाइल में कागज़ रखे। आज ही मन पक्का कर रात तक सारी अर्जियां जांच लेंगी। अगले महीने अप्रैल से कक्षाएं हर हाल में शुरू हो जानी चाहिए।

''देवरती,'' उन्होंने आवाज़ दी, ''बाहर की बिजली जलाई कि नहीं?''

''कब्बै भौजी,'' देवरती रसोई में खटर–पटर कर रही थी। ''अब तोहे तो समय का भान ही नाहिं रहत। खाना खा लौ, तो हम भी निबटै।''

सुधा ने एक नज़र बाहर के बोर्ड पर डाल ही ली। 'रमणीय प्राथमिक कन्या विद्यालय' हैलोजेन की रोशनी में नहा उठा था। ◆

पता : आदर्श स्कूल के सामने, भगवानदास की गली,
गणेश गंज, मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) पिन कोड – 231001
मो. : 7007224126

भाई का नाम ही था... 'संबल'

❑ पायल लक्ष्मी सोनी

गाँव का नाम था उदयपुरा—जहाँ नहरें ख़ामोशी से बहती थीं, खेतों की मेड़ों पर सरसों के फूल हँसते थे और मिट्टी की सोंधी महक रिश्तों को बाँधकर रखती थी, उसी गाँव में रहते थे पारस और उसकी छोटी बहन फूली।

फूली का जन्म ऐसे समय हुआ था, जब घर में बस एक छप्पर बचा था, और माँ की कोख के साथ—साथ थाली भी खाली हो चली थी। लेकिन पारस की आँखों में जैसे तारे उतर आए थे। वह केवल आठ साल का था, लेकिन जब उसने पहली बार बहन को गोद में लिया, तो बोला— "बाबा, अब हमें किसी से डर नहीं। मेरे पास मेरी 'छोटी माँ' आ गई है।"

फूली के जन्म के साथ ही जैसे घर में कोई दीपक जल उठा था। माँ ने पारस को बहन की देखभाल का अधिकार दिया और पारस ने उस अधिकार को कर्तव्य मान लिया। वह स्कूल से लौटता तो पहले बहन की मालिश करता, फिर मिट्टी के बर्तनों में दूध गरम कर उसे पिलाता। फूली उसकी गोद में खेलती, उसके बाल खींचती, कभी रोती तो पारस उसे आँगन की तुलसी के पास ले जाकर कहानियाँ सुनाता— "देख फूलो, ये तुलसी है, माँ कहती हैं इसका मन साफ होता है। जैसे तू है।"

वर्ष बीते। खेत सूखते रहे, पिता की देह भी एक दिन सूख गई। पारस के कंधे पर अब सिर्फ बैलों की जोड़ी नहीं, घर का भार भी था। वह खेत जोतता, फिर स्कूल जाता। फूली अब आठ साल की हो चली थी, स्कूल जाती थी, लेकिन घर आने के बाद पारस की थकान को समझती थी। वह उसका चेहरा धोती, पुराने लोटे में जल लाकर उसके पाँव धोती और धीरे से कहती— "भैया, आज माँ को सपना आया था, तुम अफसर बनोगे।"

पारस हँस देता, "अभी तो फावड़ा पकड़ना नहीं छूटा, अफसर बनने का सपना बाद में देखेंगे," लेकिन फूली नहीं मानती। वह हर रात पारस के पास बैठती और उसकी किताबें पलटती। वह अक्षर नहीं पहचान पाती थी, लेकिन उनमें भैया की तस्वीरें खोजती थी। जब पारस उसे पढ़ाता तो उसकी आँखों में चमक होती, जैसे संसार का कोई रहस्य खुल रहा हो।

एक दिन जब बारिश से खेत बह गए और घर में अनाज की जगह खाली बोरियाँ पड़ी थीं, माँ ने कहा— "पारस, अब तुझे शहर जाना होगा। खेत नहीं बचे, फूली का भविष्य नहीं मिटा

सकते।" पारस चुप रहा। शहर जाना आसान नहीं था, लेकिन जब उसने बहन को पुराने कपड़ों में सिलकर गुड़ियों से खेलते देखा तो उसका संकल्प दृढ़ हो गया। उसने एक छोटी पोटली बांधी, माँ के चरण छुए और फूली के माथे पर हाथ रखकर कहा– "पढ़ाई मत छोड़ना फूलो, एक दिन तेरे लिए स्कूल बनवाऊँगा।"

शहर का जीवन कठिन था। वहाँ न खेत थे, न रिश्ते। सिर्फ लोग थे, जो समय के साथ बदलते थे। पारस ने पहले ढाबे में बर्तन धोए, फिर एक गोदाम में काम मिला। वहाँ रात–दिन की मेहनत के बदले सिर्फ इतना मिलता था कि चिट्ठियों में माँ के लिए दवा और बहन के लिए किताबें भेज सके। फूली हर चिट्ठी पढ़ती और भैया के अक्षरों में अपना भविष्य गढ़ती। वह अब स्कूल में प्रथम आती थी और शिक्षिकाएँ कहतीं– "इस लड़की में कुछ बात है।"

एक बार स्कूल में भाषण प्रतियोगिता हुई, विषय था– 'मेरा आदर्श'। जब फूली मंच पर गई तो उसने कहा–"मेरा आदर्श कोई राजनेता, अभिनेता या वैज्ञानिक नहीं। मेरा आदर्श मेरा भैया है, जिसने अपने सपनों को मेरी पढ़ाई में बदल दिया, जिसने खेत की मिट्टी छोड़कर ईंटों की धूल में पसीना बहाया, ताकि मैं एक दिन आसमान छू सकूँ। भैया कहते हैं– सपने आँखों में नहीं, जीवन में बोने होते हैं।''

पूरा स्कूल स्तब्ध रह गया था। वहाँ कोई आँसू नहीं रोक पाया। इस बीच पारस ने एक छोटी सी नौकरी पा ली थी– एक पुस्तकालय में सहायक की। वह दिनभर किताबों के बीच रहता और रात को उन किताबों को चुपचाप अपनी बहन के नाम करता– "ये पढ़ेगी फूलो... इससे उसका मन मज़बूत होगा।"

जब फूली ने दसवीं में टॉप किया तो गाँव का नाम अखबार में छप गया। लोग घर आने लगे, मिठाइयां लाने लगे लेकिन माँ की आँखें बार–बार दरवाज़े की ओर जातीं– जैसे कहती हों, "मिठाई नहीं चाहिए, मेरा बेटा चाहिए।"

अगले महीने पारस छुट्टियों में घर आया। दुबला हो गया था पर चेहरे पर वही उजास। फूली उससे लिपट गई– "भैया, मेरी किताबें अब मुझे नहीं पढ़तीं, मैं उन्हें पढ़ती हूँ।" पारस हँस पड़ा– "तू तो अब पंडिताइन बन गई है।"

रात को माँ ने धीरे से कहा, "अब फूली बड़ी हो रही है बेटा, उसके रिश्ते आने लगे हैं।" पारस ने कहा– "जैसे आप कहें माँ, लेकिन एक बात याद रखिए, ये सिर्फ आपकी बेटी नहीं, मेरी ज़िम्मेदारी भी है।"

कुछ ही दिन बाद एक अच्छा रिश्ता आया– पास के कस्बे के शिक्षक का बेटा। पढ़ा–लिखा, समझदार। लड़की देखने घर आया और जब फूली ने उससे कहा– "मैं शादी से पहले कॉलेज पूरा करना चाहती हूँ" तो उसने मुस्कुराकर कहा– "तभी तो पसंद आईं आप।"

शादी तय हुई। पारस ने जीवन की सारी कमाई बहन की शादी में लगा दी। न कोई दिखावा, न आडंबर, लेकिन हर चीज़ में सादगी की गरिमा थी। गाँव के लोग कहते– "ऐसा भाई तो किस्मत से मिलता है।"

शादी के दिन जब कन्यादान की घड़ी आई तो पारस की आँखों में आँसू थे, लेकिन उसने उन्हें पोंछा नहीं। उसने बस बहन का हाथ दूल्हे के हाथ में देते हुए कहा– "यह सिर्फ बहन नहीं, मेरा अभिमान है। इसे सिर पर रखना, पाँव तले नहीं।"

फूली विदा हो गई, लेकिन हर सप्ताह पत्र आता। वह लिखती– "भैया, तुम्हारी किताबें अब मेरी अलमारी में हैं। मैं भी एक स्कूल में पढ़ाने लगी हूँ। बच्चों को तुम्हारी कहानियाँ सुनाती हूँ।"

समय बीता। माँ चल बसीं। पारस अब अकेला था, लेकिन उसे अकेलापन नहीं सालता था क्योंकि हर रविवार फूली आ जाती–पति के साथ, बच्चों के साथ। वह अब भी भैया के पाँव छूती और पारस हर बार कहता– "अब तू माँ हो गई है, मेरे पैर मत छू।"

एक दिन गाँव में पुस्तकालय बनने की घोषणा हुई। अधिकारियों ने कहा– "क्या लिखा जाए भवन पर?"

गाँव वालों ने एक स्वर में कहा– "पारस पुस्तकालय'' रखिए। क्योंकि उन्होंने हमें बताया कि ज्ञान सिर्फ किताबों में नहीं, रिश्तों में भी होता है।" उस दिन पारस ने एक पुराना कागज़ निकाला– वह भाषण, जो कभी फूली ने स्कूल में दिया था। उसके किनारों पर वक़्त की झुर्रियाँ थीं, पर हर शब्द अब भी धड़क रहा था।

उसके नीचे पारस ने सिर्फ एक वाक्य और जोड़ा–"अगर मेरी बहन उड़ पाई, तो शायद मेरे पंख व्यर्थ नहीं गए।" ◆

पता : बी 4/23, गोमती नगर विस्तार, सेक्टर–1, लखनऊ'226010

मो. : 9140385407

मेहँदी का रंग

❑ रतन खंगारोत

सुनो बेटा! ये मेरी बहू ही नहीं मेरी बेटी भी है इसलिये इसका अच्छे से ख्याल रखना। मेरी लाडो बहू के खाने–पीने का पूरा ध्यान रखना। और हाँ जम्मू पहुंचते ही मुझे कॉल कर देना। अरे! तुम दोनों ने सर्दी के कपड़े तो रखे ही नहीं, पंकज बेटा तुम इतनी बड़ी लापरवाही कैसे कर सकते हो? ऐसी ही न जाने कितनी हिदायतों के साथ पंकज, रवीना को लेकर अपने हनीमून पर जा रहा था।

अभी कुछ दिन पहले ही शादी हुई थी दोनों की। बहुत लम्बे समय से इनकी शादी की चर्चा चल रही थी पर पंकज की जॉब ही ऐसी थी कि उसे अवकाश ही नहीं मिल रहा था और जब कभी मिला तो शादी का कोई मुहूर्त ही नहीं निकल रहा था। पाँच वर्ष की सगाई के बाद अब जाकर दोनों की शादी हुई है।

वैसे भी मुम्बई जैसे व्यस्त शहर में रहने वाले भी इस महानगर की तरह मशीन बने हुए हैं। किसी को कहाँ फुरसत है की वो कुछ पल अपने और अपनों के लिए निकाल सके। इस शहर में हर रोज कई किस्से–कहानियां बनती और बिगड़ती हैं। इसकी रफ्तार इतनी तेज है कि आप सामने वाले को पहचानने की कोशिश करोगे, तब तक वह आप से बहुत दूर निकल जायेगा। क्योंकि यहाँ हर शख्स इतना व्यस्त है कि उसके पास समय नहीं है किसी से जान–पहचान बढ़ाने का पर यहाँ कुछ अपवाद भी है। इस महानगर की अपनी पहचान और अपना रुतबा है कि लोग चुम्बक की तरह खींचे चले आते हैं।

सगाई के इतने लंबे अरसे तक रहने के कारण रवीना के पिता ने कई बार रिश्ता नहीं रखने की बात चलाई। परन्तु हर बार रवीना की जिद्द के आगे उन्हें झुकना ही पड़ा सगाई के बाद से ही पंकज और रवीना की बातचीत शुरू हो गई थी। दोनों ही अपने इस प्यारे रिश्ते को बहुत सम्मान देते थे। फिर पंकज के घरवालों ने तो सगाई के दिन से ही रवीना को अपनी बहू मान लिया था।

मिस्टर भारद्वाज की इकलौती संतान पंकज उनके दिल की धड़कन था। जिसे उन्होंने कभी भी अपनी नज़रों से दूर नहीं किया था पर अब पंकज की जॉब सात समंदर पार थी।

मिस्टर भारद्वाज और उनकी पत्नी रमा नहीं चाहते थे कि उनका बेटा देश से बाहर जाये

पर कहते हैं न की ''सारी दुनिया जीतने वाला इंसान भी अपनी संतान के आगे हार जाता है'' मिस्टर और मिसेज भारद्वाज भी अपने बेटे के मोह के आगे हार गए। बहुत मुश्किल से निकल रहे थे वो दिन जो धीरे–धीरे पंकज के विदेश जाने की तारीख को नजदीक ला रहे थे। रमा जी सुलझे विचारों की हंसमुख महिला थीं, जो हर हाल में अपने बेटे के सपनों को पूरा करने मे सहयोग कर रही थीं। मिस्टर भारद्वाज भी कोई कड़क मिजाज़ पिता नहीं थे परंतु वो अपने उसूलों के पक्के थे पर बेटे की ज़िद्द के आगे दोनों ही नतमस्तक हो गए।

मिस्टर भारद्वाज के सफल बिजनेसमैन होने व शहर के वी आई पी एरिये में आलीशान बंगले को देख कर उनके बेटे पंकज के लिए अनेक रिश्ते आने लगे थे। जबकि उस समय पंकज तो केवल कॉलेज से पासआउट ही हुआ था। रिश्ता लाने वालों को ये विश्वास था कि भारद्वाज परिवार का इकलौता वारिस है पंकज तो ये सारा बिजनेस वो ही तो संभालेगा। परंतु पंकज के ख़्वाबों में उसकी दुनिया कुछ अलग ही थी। वो पहले विदेश में नौकरी करके स्वयं को साबित करना चाहता था। इसीलिए वो अपने लिये आने वाले हर रिश्ते के लिये मना कर देता था। उसके मना करने का अन्दाज़ भी ऐसा होता था कि लोग नाराज़ होने की जगह उस पर गर्व महसूस करते और सोचते कि कितना अच्छा होता कि ऐसा होनहार लड़का हमारा दामाद होता। फिर भी उसके विचारों का सम्मान करते हुए लोग उसे आशीर्वाद देकर चले जाते थे।

पंकज के लिये जब रवीना का रिश्ता आया तो उसके माता–पिता को कोई विशेष खुशी नहीं हुई थी क्योंकि वो जानते थे कि इस रिश्ते का भी वही हाल होगा, जो पहले आये रिश्तों का हुआ है परंतु उस समय उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा, जब पंकज ने रवीना से रिश्ते की बात को हाँ कहा। ये उनके लिये बेटे द्वारा दिया गया बड़ा उपहार था। रमा जी समझ गई थीं कि इस बार उनका लाडला, रवीना की मासूमियत भरी खूबसूरती पर मोहित हो गया है।

रवीना से रिश्ते की हां करने के अगले ही दिन पंकज का यूएसए की कम्पनी से ज्वाइनिंग का मेल आ गया था। हालाँकि इसके लिये पंकज ने बहुत पहले अप्लाई किया था उसके पास मेल उसी दिन आया था, इसलिए वो रवीना को अपने लिए बहुत ही अधिक लकी मान रहा था और जाने से पहले रवीना के साथ सगाई कर लेना चाहता था। उसने अपने मन की बात अपने माता–पिता के सामने रखी। वे बहुत अधिक खुश थे, अपने बेटे की नौकरी के लिए भी और इस रिश्ते को हां करने के लिए भी।

एक महीने के भीतर ही पंकज को अपनी नौकरी ज्वाइन करनी थी, इसलिए उन्होंने रवीना के पिता से बात करके आनन– फानन में ही सगाई की तारीख तय की।

सगाई के दो दिन बाद ही पंकज को यूएसए जाना था। रवीना भी शॉपिंग के लिए हर समय उसके साथ जाती थी। मिस्टर भारद्वाज व रमा जी भी उन दोनों के रिश्ते को अच्छे से समझ रहे थे, परंतु समय तो किसी के भी नियंत्रण में नहीं होता है।

पंकज, रवीना से बहुत जल्दी वापस आकर शादी करने का वादा करके विदेश चला गया था। उसे एयरपोर्ट तक छोड़ने के लिये उसके माता–पिता के साथ–साथ रवीना भी गई थी।

पंकज को गये एक वर्ष से भी ऊपर हो गया था, पर उसे अब भी अवकाश नहीं मिल रहा था। मिस्टर भारद्वाज और रमा जी के लिये शुरुआत में तो समय निकालना भी मुश्किल था परन्तु अब धीरे–धीरे उन्हें भी आदत सी हो गई

मुम्बई जैसे व्यस्त शहर में रहने वाले भी इस महानगर की तरह मशीन बने हुए हैं। किसी को कहाँ फुरसत है कि वो कुछ पल अपने लिए और अपनों के लिए निकाल सके। इस शहर में हर रोज़ कई किस्से–कहानियां बनती और बिगड़ती हैं। इसकी रफ़्तार इतनी तेज़ है कि आप सामने वाले को पहचानने की कोशिश करोगे तब तक वह आप से बहुत दूर निकल जायेगा। क्योंकि यहाँ हर शख़्स इतना व्यस्त है की उसके पास समय नहीं है, किसी से जान– पहचान बढ़ाने का पर यहाँ कुछ अपवाद भी हैं। इस महानगर की अपनी पहचान और अपना रुतबा है कि लोग चुम्बक की तरह खिंचे चले आते हैं।

थी। रवीना उनको मिलने के लिए आती रहती थी। हर त्यौहार पर तो रमा जी स्पेशली कॉल करके उसे बुलाती थीं।

डेढ़ वर्ष बाद पंकज अपने देश आया। पूरे एक महीने की छुट्टी पर परंतु वो समय भी ऐसा था जब पंकज और रवीना की शादी का कोई मुहूर्त नहीं था।

सच है कि समय बड़ा बलवान होता है और उसके आगे तो किसी की भी नहीं चलती।

मिस्टर भारद्वाज, रमा जी व रवीना के लिये वो समय पलक झपकाने भर जितना ही था। इस बार वापस जाना पंकज के लिए भी आसान नहीं था परंतु रवीना, पंकज के सपनों के बीच नहीं आना चाहती थी।

पंकज अपनी ड्यूटी पर चला गया और रवीना को इन्तज़ार करने का ऐसा समय दे गया, जिसकी कोई सीमा नहीं थी।

पंकज अपने काम को बहुत महत्व देता था। वो अपनी कम्पनी का मेहनती और होनहार कर्मचारी था, इसलिये ही इस बार जब उसके एक वर्ष बाद वापस आने का समय आया तो, कम्पनी ने उसका प्रमोशन करके उसे हेड ऑफिस भेज दिया। इधर रवीना के पिता ने शादी का मुहूर्त भी निकलवा लिया था। सोचा था कि दो वर्ष से ऊपर हो गए सगाई को तो इस बार आते ही पहले इन दोनों की शादी कर देंगे।

पर कहते हैं न कि इंसान के सोचने से कुछ नहीं होता। पंकज की छुट्टी कैन्सिल हो गई और उसे जिस हेड ऑफिस भेजा वहां पर उसका कार्यकाल भी पूरे दो वर्ष का था। पंकज जिस मुकाम पर था, वहां से वापस आना आसान नहीं होता है। पंकज अपने पिता के बिजनेस को जिन ऊंचाइयों तक ले जाना चाहता था, उसके लिये ये हेड ऑफिस की जिम्मेदारी सम्भालना सोने पर सुहागा जैसा था।

रवीना के पिता को जब पंकज के प्रमोशन मिलने और छुट्टी कैंसिल होने का समाचार मिला तो वो न खुश हो पा रहे थे और न ही दुखी। एक तरफ उनकी बेटी का उज्ज्वल भविष्य था और दूसरी तरफ समय पर शादी नहीं होना बड़ी उलझन पैदा कर रही थी, अब उनको अपनी बेटी का जीवन अंधकार में लग रहा था इसलिए वह भारद्वाज फैमिली के पास गए। वे इस रिश्ते को खुशी–खुशी तोड़ना चाहते थे ताकि रवीना की सगाई कहीं और करके जल्द से जल्द शादी कर दे। जब यह बात रवीना को पता चली तो उसने इसका विरोध किया। वह पंकज के अलावा किसी दूसरे को अपने जीवनसाथी के रूप में मंजूर नहीं करना चाहती थी। रवीना ने रो–रो के पूरे घर को ऊपर उठा लिया था व खाना–पीना सब छोड़ दिया। उसकी जिद्द के आगे पिता को झुकना पड़ा। उनके सामने भी पंकज का इन्तजार करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं था परंतु ये फैसला भी उन्होंने दिल पर पत्थर रखकर लिया।

धीरे–धीरे समय गुज़रने लगा। रवीना के लिये एक–एक दिन वर्ष के समान था और उसके पिता के लिए हर दिन पहाड़ जैसा, जिसका कोई अंत नहीं।

पूरे दो वर्ष और चार माह बाद पंकज ने घर वालों को अपने आने की सूचना दी। ये खबर भारद्वाज परिवार और रवीना के लिये किसी संजीवनी बूटी जैसी साबित हो रही थी। इस बार पहले ही पंकज और रवीना की शादी की तारीख तय कर ली गईं, ताकि पंकज के आते ही पहला कार्य उन दोनों की शादी करने का हो। जिस दिन पंकज भारत आया, उसी दिन शाम को रवीना के पिता ने अपनी तरफ से पंकज के लिए वेलकम पार्टी रखी।

मिस्टर भारद्वाज मिलनसार स्वभाव की वजह से इस पार्टी को मना नहीं कर पाये। वैसे भी वो रिश्तों की इज्ज़त करने वाले लोगों में से हैं। रवीना के पिता ने पार्टी में ही दोनों की शादी की तारीख का ऐलान कर दिया था जिसे उन्होंने व मिस्टर भारद्वाज ने तय किया था। पंकज व रवीना भी बहुत खुश थे, क्योंकि ठीक 15 दिन बाद दोनों एक अटूट रिश्ते मे बँधने जा रहे थे।

दोनों ही परिवार शादी की तैयारियों में व्यस्त हो गए थे। शॉपिंग, कार्ड, रिश्तेदारों को निमंत्रण देना, शादी का जोड़ा बनवाना व ज्वैलरी खरीदना जैसे बहुत सारे काम होते हैं, जिन्हें पूरा करने के लिये समय बहुत ही कम था।

आख़िर वो दिन आ ही गया, जब दोनों एक अटूट बंधन में बंधने जा रहे थे। शादी बहुत ही धूम धाम से की गई थी। पंकज व रवीना की जोड़ी को शादी में आने वाले हर रिश्तेदार ने सराहा भी और आशीर्वाद भी दिया।

और आज वो दिन आ ही गया, जब दोनों हनीमून के

लिये जम्मू–कश्मीर जा रहे थे। घाटी में बहुत सालों से शांति थी तो हर वो व्यक्ति जो घूमने–फिरने का शौकीन है वो हरी–भरी बर्फीली वादियों में ही घूमना चाहता है। रवीना व पंकज ने भी पूरे दस दिन का प्लान बनाया था।

बहुत सारे सपने लेकर दोनों कश्मीर के लिये रवाना हो गए थे। रवीना के गोरे सुन्दर हाथों पर मेहँदी ने ऐसा रंग चढ़ाया था कि पंकज तो मेहँदी के इस रंग पर ही मोहित हो गया था। पंकज द्वारा बार–बार उसके हाथों की तारीफ करने पर रवीना हंसने लगती और कहती कि आप मेरी मेहँदी पर नज़र मत लगाओ, ये तो सच्चे प्यार की निशानी होती है।

जम्मू आये अभी उन्हें दो दिन ही हुए थे। आज वैष्णो देवी के दर्शन करने जाना था। रमा जी ने रवीना को वैष्णो देवी ले जाने के लिये चुनरी व सुहाग की पोटली घर से ही दे दी थी, ताकि वो दोनो अपने सुखी जीवन का आशीर्वाद माँ से लेकर आये। रवीना बहुत अधिक उत्सुक थी माँ के दर्शन को। चारों तरफ बड़े–बड़े पहाड़, ऊँचे झरने और हरियाली से घिरा माँ वैष्णो देवी का मार्ग हर आने–जाने वाले यात्री का मन मोह लेता है। प्रारंभ में तो दोनों ही अन्य यात्रियों के साथ–साथ पैदल ही चलने लगे। ये 12 किलोमीटर का लम्बा सफर बहुत रोमांचकारी अनुभव वाला था परन्तु अब दोनों को ही थकान होने लगी।

रवीना के मुरझाए चेहरे को देखकर पंकज ने एक खच्चर वाले को रोका। रवीना ने बहुत मना किया प्लीज़ पंकज, ''आप ये खच्चर वाला प्लान कैन्सिल कर दीजिये। पता नहीं क्यूं पर मुझे अच्छी फीलिंग नहीं आ रही है।'' रवीना ने कहा पर पंकज नहीं माना।

तुम ये कैसी बातें कर रही हो? ये बेचारे ग़रीब किसी का क्या बिगाड़ने वाले हैं और फिर हमारे जैसे यात्रियों से ही इनकी रोज़ी–रोटी चलती है। इसीलिए ये फालतू की चिंता करना छोड़ो और खच्चर पर बैठो।'' पंकज की ज़िद्द के आगे रवीना को झुकना ही पड़ा और वह खच्चर पर बैठ गई। वो पाँच–छह लोग थे परन्तु उन्होंने खच्चर 10 से भी ज़्यादा ले रखे थे। सभी लोग अपनी यात्रा को लेकर इतने उत्साहित थे कि किसी अनहोनी की आशंका से कोसों दूर थे। हालांकि उन्हें थोड़ा अजीब लगा जब उन खच्चर वालों ने कहा कि आप 25–30 लोग एक साथ चलिये। वे 5–6 खच्चर वाले सभी को एक साथ घेर कर चलने लगे।

लोग माता की जय–जयकार करते हुए आगे बढ़ने लगे। अचानक, बीच राह में उन खच्चर वालों ने पूरे जत्थे को रोक लिया और बिना समय गंवाए एक–एक पुरुष पर गोलियों की बौछार कर दी। सायलेंसर लगी बन्दूकें जो केवल लाशें ही गिरा रहीं थीं। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि आखिर ये हो क्या रहा है? इस भीड़ में बहुत सारे नवजोड़े ही थे।

अचानक मची चीख–पुकार ने सभी यात्रियों का ध्यान इस जघन्य काण्ड की तरफ खींच दिया। जो यात्री जिधर थे, वो उधर ही भाग गये। सबको अपनी जान बचाने की कोशिश स्वार्थी बना रही थी। रवीना की चीख उस घाटी मे गूंज गई जब उसने पंकज को निढाल हो कर खच्चर से नीचे लुढ़कते देखा। वह जैसे–तैसे करके खच्चर से नीचे उतरी और पंकज से लिपट गई। सुरक्षाबल का जत्था सभी की चीखें सुनकर वहां आया तब तक वो लोग वहां से गायब हो गये थे। वहां केवल खून ही खून और लाशों के ढेर थे। ये मंजर हर किसी का दिल दहला देने वाला था।

अचानक मची चीख–पुकार ने सभी यात्रियों का ध्यान इस जघन्य काण्ड की तरफ खींच दिया। जो यात्री जिधर थे वो उधर ही भाग गये। सबको अपनी जान बचाने की कोशिश स्वार्थी बना रही थी। रवीना की चीख उस घाटी मे गूंज गई जब उसने पंकज को निढाल हो कर खच्चर से नीचे लुढकते देखा। वह जैसे–तैसे करके खच्चर से नीचे उतरी और पंकज से लिपट गई। सुरक्षाबल का जत्था सभी की चीखे सुनकर वहां आया तब तक वो लोग वहां से गायब हो गये थे। वहां केवल खून ही खून और लाशों के ढेर थे। ये मंजर हर किसी का दिल दहला देने वाला था।

अपनी शादी की मेहँदी का रंग देखकर खुश होने वाली रवीना के हाथ अब पंकज के खून से गहरे लाल हो गए थे। वो पंकज को इक नजर देख रही थी और बार–बार एक

ही बात बोल रही थी कि– ''पंकज उठो, देखो न मेरी मेहंदी का रंग कितना लाल हो गया है। तुम सुन रहे हो न, ये गहरे प्यार की निशानी होता है और जो प्यार करते हैं वो ऐसे बीच राह में नहीं छोड़ते।'' रवीना पंकज के सिर को अपनी गोद मे लेकर बैठ गई और अपने हाथों को देखती रही।

सुरक्षाबल के योद्धाओं के लिये रवीना को समझाना बहुत मुश्किलें हो रहा था। वो पंकज के शरीर से इतना मजबूती से लिपट गयी थी कि उसे वहां से हटाने की सारी कोशिशें नाकाम हो रही थी।

दो–तीन सैनिक रवीना को पकड़े हुए थे। तभी उनके सीनियर ऑफिसर वहां आ गए और रवीना को छोड़ने का इशारा किया। वहां का पूरा वातावरण हृदय विदारक था। चारों तरफ भयंकर हाहाकार मचा हुआ था परन्तु इन सबके बीच रवीना की चीख सबके मन को विचलित कर रही थी। करीब आधे–पौन घंटे तक लगातार तड़पने के बाद रवीना बेहोश हो गई थी। तब उसे पंकज से अलग कर हॉस्पिटल भेजा गया। मरने वालों की तादाद को देखते हुए सुरक्षा कर्मियों की संख्या बढ़ाई गई। कुछ ही देर में सारी खबरें आग की तरह चारों तरफ फैल गई। इसमें सोशल मीडिया ने भी आग में घी का काम किया। मुम्बई बैठे मिस्टर भारद्वाज के परिवार और रवीना के परिवार के पास भी ये खबरें कुछ ही समय में पहुंच गई थी। पंकज के पापा उसकी माँ से ये सब छुपाने चाहते थे परन्तु आजकल फोन सभी के पास होता है तो रमा जी से ये खबरें कब तक छुपती? मिस्टर भारद्वाज रमा के पास आये और देखा कि रमा जी वहां बेहोश पड़ी हैं। जैसे–तैसे करके मिस्टर भारद्वाज ने खुद को सम्भाला और अपने पड़ोस में रहने वाले शर्मा जी को फोन करने ही वाले थे कि दरवाज़े की घंटी बजने लगी। बड़ी मुश्किल से खुद को सम्भाला और दरवाजे को खोला तो देखा कि उनके आसपास रहने वाले सभी लोग उनके घर के बाहर खड़े हैं। इतनी देर से अपने आँसुओं को रोक कर रखने वाले भारद्वाज जी ने जैसे ही अपनों को देखा तो अपने कलेजे के टुकड़े के लिए तड़प उठे। लोगों के पास बोलने के लिए शब्द नहीं थे। जिन्हे खुद को रोना आ रहा हो वो भारद्वाज जी से कैसे कह दे कि आप रोना बंद करो और हिम्मत रखो। कुछ लोगों ने मिस्टर भारद्वाज को सम्भाला और महिलाएं अन्दर रमा जी के पास गईं। उन्हें बेहोश देखकर हॉस्पिटल ले जाया गया। तब तक रवीना के परिवार के लोग भी वहां आ चुके थे।

रवीना के घर वाले और दो–चार पड़ोसी मिस्टर भारद्वाज के साथ जम्मू कश्मीर के लिए रवाना हो गए। रमा जी की चिंता नहीं करने की साफ हिदायत उनके पड़ोसियों द्वारा दी गई। उधर जम्मू के हॉस्पिटल में रवीना को होश में रखना बहुत मुश्किल हो रहा था। जैसे–तैसे उसको होश में लाया जाता तो फिर से वही चीख–पुकार और फिर से बेहोश हो जाना। पंकज के पोस्टमॉर्टम के बाद उसके शरीर को घर वालों को सौंप दिया गया पर मिस्टर भारद्वाज द्वारा पेपर्स साइन करना भी सम्भव नहीं हो पा रहा था, इसलिए ये सारे काम पंकज के ताऊ जी के बेटे ने किया जो वहीं आर्मी में नौकरी करता था। रवीना और पंकज को लेकर सभी मुम्बई के लिए रवाना हो गए। वे सभी सही से आपस में बोल भी नहीं पा रहे थे पर क्या करते ये कठिन सफ़र पार करना भी ज़रूरी था।

पंकज के अन्तिम सफर की तैयारियां शुरू हो चुकीं थीं। एक डॉक्टर को घर पर ही बुला लिया गया था जो बार–बार बेहोश होने वाली रमा जी और रवीना का ध्यान रख रहा था। रवीना के हाथ अब भी पंकज के लहू के रंग से लाल हो रहे थे। नर्स ने हाथों को सीधा करके साफ करना चाहा तो कुछ–कुछ होश में आती रवीना ने ये कहकर मना कर दिया कि– ''इसे मत हटाओ, ये तो मेरे पंकज के प्यार का रंग है।

जैसे ही पंकज को लेकर जाने लगे, रवीना भाग कर बाहर आ गई। किसी से नहीं सम्भल पा रही थी। बड़ी मुश्किल से लोग खुद को पत्थर का बना कर पंकज को वहां से ले गए। रवीना वहीं गिर गई, इस बार हाथों की मुट्ठी खुल गई थी। पंकज के प्यार का रंग उसके हाथों में सभी ने देखा। औरतों की फुसफुसाहट एकाएक बढ़ गई कि देखो– ''अभी तो बेचारी के मेहँदी का रंग भी फीका नहीं पड़ा।'' ◆

पता : 15–ए, जीनमातानगर, शेखावत मार्ग,
जयपुर–302012
मो. : 7665798012

वारिस

❑ प्रगति त्रिपाठी

लंबे समय से कैंसर की बीमारी से जूझते हुए सीमा जी का स्वर्गवास हो गया। अवधेश जी पत्नी का हाथ थामे चुपचाप बैठे थे। उन्हें यकीन नहीं हो रहा था कि सीमा ने उनका साथ छोड़ दिया। डॉक्टर की बातें... जैसे उन्हें सुनाई ही नहीं पड़ी हो। बेटियां चीख मारकर रोए जा रही थीं। अवधेश जी का भतीजा लोकेश उन्हें तसल्ली दे रहा था। धीरे–धीरे उनके हाथ ढीले पड़ते गए।

अंतिम संस्कार होने के बाद सारे रिश्तेदार जाने लगे। बड़ी बेटी ऊषा छोटी बेटी आशा और उनके पति आपस में बातचीत कर रहे थे।

''आशा अब पिताजी को तुझे ही देखना पड़ेगा। मैं तो इंडिया से बाहर रहती हूं। मैं तो यहां कम ही आ सकूंगी।''

''तुम चिंता मत करो दीदी ! मैं हूं ना, मैं पिताजी को अपने घर ले जाऊंगी और उनकी पूरी ज़िम्मेदारी उठाऊंगी।'' आशा ने बड़ी दीदी को आश्वस्त करते हुए कहा।

दोनों बेटियां अवधेश जी का पूरा ध्यान रख रही थीं। अवधेश जी बेटियों का सेवाभाव देखकर मन ही मन अपनी परवरिश पर नाज़ कर रहे थे। रात में खाना खाने के समय ऊषा उनसे कहती हैं ''पिताजी परसों मेरी फ्लाइट है। इतनी जल्दी जाना तो नहीं चाहती थी, लेकिन मेरा और मनोज का ऑफिस है। मुश्किल से दो सप्ताह की छुट्टी लेकर आई थी। उम्मीद करती हूं कि आप मेरी मजबूरी समझ सकेंगें।'' ऊषा ने अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा।

''हां ऊषा मैं समझता हूं। तुम अपने परिवार को देखों।'' पिताजी ने ऊषा को आश्वस्त करते हुए कहा।

तभी आशा बोल पड़ी ''दीदी तुम पिताजी की चिंता क्यों करती हो। मैं हूं ना। मैं पिताजी को अपने घर ले जाऊंगी और उनका पूरा ख़्याल रखूंगी। आज से पिताजी हमारे साथ रहेंगे। क्यों महेश?''

''हां..हां बिलकुल।'' आशा के पति महेश ने भी अपनी सहमति जताते हुए कहा।

''आशा मैं यहीं ठीक हूं बेटी! तुम लोगों को मेरी चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। यहां लोकेश है मेरी देखभाल करने के लिए।''

''आपको लोकेश के भरोसे हम नहीं छोड़ सकते पिताजी। हमें आपकी चिंता लगी रहेगी।'' दोनों ने एक साथ कहा।

''ऐसा क्यों कह रही हो बेटी? जब तुम दोनों ब्याह करके इस घर से चली गई थी, तब से लोकेश ने हमारी देखरेख में कोई कमी नहीं छोड़ी। तुम्हारी मां को बार–बार अस्पताल ले जाना,

दवा–दारू, घर का काम देखना। सब उसी ने तो किया है। अब रही मेरी बात तो मेरी देखरेख वही करेगा। इसलिए कह रहा हूं तुम दोनों मेरी चिंता मत करो, अपनी घर–गृहस्थी संभालो।''

''पिताजी आज लोकेश आपके साथ है कल को उसकी शादी हो गई फिर तो आप अकेले ही रह जाएंगे ना?''

''ऐसा क्यों सोचती हो? मेरे सिवा लोकेश का है ही कौन? मैंने लोकेश को अपने बेटे की तरह रखा है, पढ़ाई खत्म करके कोई नौकरी कर लें फिर ब्याह तो उसका करना ही है। घर में बहू आ जाएगी तो मेरी देखभाल और अच्छी तरह से होगी।'' बाबूजी की बातें सुनकर ऊषा और आशा के चेहरे पर चिंता की लकीरें उभर आई। तभी लोकेश वहां आ गया। ''लोकेश कैटरर का हिसाब कर आए बेटा ?''

''हां पिताजी, मैंने टेंट वाले, पानी वाले और कैटरर तीनों का हिसाब कर दिया।''

''अच्छा, चलो ज़रा वर्मा जी के घर, मुझे उनसे कुछ ज़रूरी काम है।''

''जी चलिए।'' वर्मा जी का नाम सुनते ही दोनों बहनें और दामाद की चिंता और भी ज्यादा बढ़ गई। उनके जाने के बाद आशा बोली ''दीदी लगता है इस लोकेश ने पिताजी को अपने वश में कर लिया है। पिताजी हमारी बात ही नहीं सुन रहे हैं। अब क्या होगा? क्या वो सारी जायदाद और ये कोठी लोकेश के नाम....'' गुस्से से आशा का चेहरा लाल हो रहा था। ''नहीं आशा, ऐसा कैसे हो सकता है? कानूनी रूप से पिताजी की संपत्ति की हम दोनों ही वारिस हैं। पिताजी ने लोकेश को गोद थोड़ी ना लिया है, जो वो उनका वारिस हो जाएगा! सारी संपत्ति हम दोनों बहनों की है, उसे दूसरा कोई कैसे ले सकता है?'' ऊषा ने आशा की शंका पर विराम लगाते हुए कहा।

''फिर पिताजी वर्मा अंकल के घर क्यों गए?'' आशा ने प्रतिवाद किया। ''गांव की एक ज़मीन पर विवाद चल रहा है, हो सकता है उसके बाबत वकील अंकल से बात करने गए होंगे। तू ज्यादा मत सोच। चल मेरी पैकिंग करवा दे मुझे कल ही निकलना है।'' ऊषा ने कहा। आशा, उषा की पैकिंग करवाने में मदद करने लगी। ''दीदी मैं तो सोच रही थी कि पिताजी को हम दोनों में सबकुछ आधा–आधा बांट देना चाहिए। क्या पता कल क्या हो!'' आशा बैग में सामान रखते हुए बोली।

''हां, बात तो तेरी सही है, लेकिन पिताजी से ये बात कैसे कहें।''

वकील के पास से लौटे अवधेश जी दोनों बेटियों की बातें सुनकर सीढ़ियों पर ठिठक गए।

''तुझे तो पता है, विदेशों में लाइफ कितनी टफ है। हम दोनों पैसे कमाते हैं, लेकिन घर–गृहस्थी और रवि–रिया की पढ़ाई में सब खत्म हो जाता है। महीने के अंत तक हम ठन ठन गोपाल हो जाते हैं। मैं तो सोच रही थी कि पिताजी तुम्हारे घर चले जाते तो हम ये घर बेच देते या रेंट पर लगा देते तो हम उन पैसों को बैंक में फिक्स डिपोजिट कर देते। हमे एक्स्ट्रा इनकम के बारे में सोचना नहीं पड़ता।

''हां दीदी, मैं भी दीपक का एडमिशन टॉप इंजीनियरिंग कॉलेज में करवाने की सोच रही थी, लेकिन उस कॉलेज की फीस हमारे बजट से बाहर है।'' दोनों बेटियों की बातें सुनकर अवधेश जी चुपचाप अपने कमरे में चले गए।

कमरे में रखी आराम कुर्सी पर बैठे सहसा अतीत में खो गए। बिजली विभाग में कार्यरत अवधेश जी और उनकी पत्नी सीमा जी ने दोनों बेटियों की अच्छी परवरिश और अच्छी शिक्षा दी थी। बड़ी बेटी उषा के पीजी करने के बाद उसकी शादी एनआरआई लड़के आशुतोष से कर दी हैं। कुछ सालों बाद छोटी बेटी आशा का विवाह भी प्रोफेसर महेश से कर दिया था। दोनों बेटियां अपनी–अपनी घर गृहस्थी में रच–बस गई थी। एक दुर्घटना में अवधेश जी के भाई और भाभी की मृत्यु हो जाती है, जिस कारण भाई के इकलौते बेटे के पढ़ाई–लिखाई और परवरिश का जिम्मा अपने सिर ले लेते हैं। बेटियों के ना होने की कमी लोकेश ने पूरी कर दी थी। लोकेश अपने माता–पिता की तरह चाचा और चाची का पूरा ख्याल रखता था। चाचा–चाची के प्यार और अपनापन मिलने के कारण वह उन्हें मां–पिताजी कहने लगा था। ऊषा और आशा भी माता–पिता के प्रति आश्वस्त थी, लेकिन आज वो कितनी स्वार्थी और लालची हो गई हैं! सिर्फ अपने बारे में सोच रही हैं! एक बार भी नहीं सोचा कि मेरे ऊपर क्या गुजरेगी? इन दोनों ने तो मुझे जीते जी ही मार दिया। उन्हें ये घर सिर्फ पैसों का पेड़ नजर आ रहा है। इस घर में उनकी यादें हैं, उनका बचपन है और सबसे अनमोल सीमा की याद जुड़ी है। एक पल में सब भूल गई! इस घर को हम पति–पत्नी ने कितने जतन से संवारा था। सीमा इस घर के हर कोने में है। मैं यह घर बेचने के बारे में कभी सोच भी नहीं सकता। अगर उन्हें मुझसे पैसों की मदद ही चाहिए थी तो बेझिझक कहती। मैं खुशी–खुशी दे देता।

रात भर इसी विषय में सोचते हुए आंखों से नींद गायब हो गई, लेकिन बहुत सोच समझकर एक फैसला लिया।

सुबह उठते ही वो कहीं चले गए। वापस घर आने के बाद उन्होंने उषा और आशा को बुलाया।

''अरे पिताजी, आप सुबह–सुबह कहां चले गए थे?'' दोनों एक साथ बोल पड़ीं।

''बस यूं ही थोड़ा टहलने चला गया था। तुम दोनों बैठो मुझे तुमसे जरूरी बात करनी है। उषा तुम्हारी कल की फ्लाइट है ना बेटी?''

''जी पिताजी।''

मैं सोच रहा था कि अपनी संपत्ति का बंटवारा कर दूं। क्या जाने कल मैं रहूं ना रहूं। इतना सुनते ही दो बहनों की बांछे खिल गई लेकिन थोड़ी सी फॉर्मलिटी निभाते हुए बोल पड़ीं ''ऐसा क्यूं कह रहे हैं आप? अभी तो आपको अपने नातियों की शादी देखनी है। मरे आपके दुश्मन!''

''लोकेश बेटा, जरा वसीयत के कागजात ले आना।'' लोकेश का नाम सुनते दोनों का मुंह बन गया। ''जी पिताजी।''

''तुम दोनों को विदा करने के बाद, मैं और तुम्हारी मां बिल्कुल अकेले पड़ गए थे बेटा। तब लोकेश हमारी जिंदगी में फरिश्ता बनकर आया था। इसने हमारी देखभाल सगे बेटे से भी ज्यादा की है। तुम्हारी मां को अस्पताल ले जाना, उनकी सेवा करना, घर–गृहस्थी संभालना, सब इसने खुशी–खुशी किया। तुम दोनों भी हमारे प्रति आश्वस्त रही और अपनी घर–गृहस्थी पर ध्यान दे पाई। वरना हम दोनों में से किसी को भी कुछ होता तो तुम दोनों को ही परेशानी उठानी पड़ती, है कि नहीं?''

''जी पिताजी, सही कह रहे हैं आप।'' मैंने सोचा दो बेटी तो है मेरे पास, बेटे की कमी लोकेश ने पूरी कर दी। एक बेटा भी मिल गया, इसलिए मैंने लोकेश को कानूनी रूप से गोद ले लिया। इस कारण अब मेरी संपत्ति के तुम तीनों वारिस हो। इतना सुनते ही दोनों बहनों के पैर से जमीन खिसक गई। ''आपने हमें बिना बताए, ये सब कब ? कैसे? मां ने भी हमको नहीं बताया। इतना पराया बना दिया हमें?''

''मैंने कल ही लोकेश को गोद लिया, सोचा सही समय पर तुम दोनों को बता दूंगा।''

''हमसे बिना पूछे?''

''पिताजी मुझे कुछ नहीं चाहिए।'' माहौल में तनाव की स्थिति देखते हुए लोकेश ने कहा।

''लोकेश तुम तनिक बाहर जाओ बेटा! मैं तुम्हारी बहनों से बात कर रहा हूं।'' लोकेश चुपचाप कमरे से बाहर चला गया।

''मुझे लगा मेरा फैसला सुनकर तुम दोनों खुश होगी। लोकेश ने भाई धर्म भी बखूबी निभाया है। तुम भी तो लोकेश को अपना भाई मानती हो ना!

''हां मानते हैं हम लोकेश को भाई, लेकिन संपत्ति में हिस्सा देना, ये कहां सही है?''

''क्यों जब मैं उसे बेटा मान चुका हूं तो संपत्ति में अधिकार क्यों नहीं?''

''ओह! आपने हमारा अधिकार छीन लिया और हमें पराया कर दिया।'' उषा सुबुकते हुए बोली।

''मैंने किसी का अधिकार नहीं छीना, ना ही तुम लोगों को पराया किया और ना ही संपत्ति से तुम्हें बेदखल किया है।

मुझे तो अचरज इस बात का हो रहा है कि तुम दोनों मेरी ही बेटियां हो! संपत्ति की खातिर यथार्थ को झुठला रही हो। एक बात बताओ, विवाह के पश्चात तुम दोनों ने कभी हमारी सुध ली? तुम्हारी मां इतने कठिन और भयावह दौर से गुजरी, कितनी बार तुम दोनों उसकी सेवा और देखभाल करने आई? हमेशा तुम दोनों ने ससुराल और परिवार के प्रति व्यस्तता जताई। है कि नहीं? बोलो अगर मैं झूठ बोल रहा हूं तो?''

पिताजी के सवाल पर दोनों बहनों ने नजरें झुका ली।

''मैंने भी तुम दोनों पर कोई जिम्मेदारी नहीं लादी। बेटियां अपने ससुराल के प्रति जिम्मेदारी निभाएं वही अच्छा है। सच्चाई तो ये है कि तुम दोनों हमारे प्रति इसलिए आश्वस्त रही, क्योंकि लोकेश हमारे साथ था।'' अवधेश जी ने लंबी सांस भरते हुए कहा।

''आपकी बात सही है पिताजी।'' आशा बोली और उसके साथ ऊषा ने भी हामी भरी। ''लोकेश का हमारे प्रति निस्वार्थ सेवा भाव देखकर ही मैंने उसे कानूनी रूप से गोद लेने का फैसला किया था। हां.. अमल करने में जरा देर हो गई।

दोनों बेटियों का मुंह लटक गया। ''मुझे तो लगा तुम भी अपने भाई से उतना ही प्यार करती हो लेकिन मैं गलत था। जब मैं संपति का बंटवारा तुम तीनों में कर रहा था तब लोकेश ने मुझसे विनती करके कहा कि उसे कुछ नहीं चाहिए। जो भी संपत्ति है, उसे तुम दोनों में बांट दूं। उसे बस मेरा साथ और प्यार चाहिए।'' पिताजी और लोकेश का निस्वार्थ प्रेम देखकर दोनों बहने शर्मिंदा हो गईं।

''हमें माफ कर दीजिए पिताजी, हम स्वार्थी हो गए थे और अपने भाई को भूल गए थे।'' ''मुझसे नहीं लोकेश से माफी मांगो। तुम दोनों ने उसका बहुत दिल दुखाया है।'' आशा लोकेश को कमरे में लेकर आई। लोकेश की आंखों में आंसू थे। दोनों ने उससे माफी मांगी। ''दीदी, माफी मांगकर मुझे शर्मिंदा मत करो।'' लोकेश ने आंसू पोंछते हुए कहा। दोनों बहनों ने अपने भाई को गले से लगा लिया। ◆

पता : बी–222, जीआरसी, शुभिक्षा, एम.जे. नगर रोड, छोड़संदारा, बैंगलोर–560099
मो. : 9902188600

क्या कहें?

❑ महेन्द्र भीष्म

'चरखारी में गोवर्द्धन के मेला में अम्मा आयेंगी।' श्रीपत कक्का के बोल जीतू के कानों में मिश्री–सी घोल गए। कक्की ने नहला धुलाकर उसे नये उन्ना पहना दिये, आँखों में कजरा और नज़र न लगे मोड़ा हाँ सो माथे पर डिठौना भी लगा दिया।

आठ वर्षीय जीतू साल भर बाद अपनी अम्मा से मिलेगा...कैसे काटे थे उसने ये दिन और रात, वही जानता है।... पिता को मुखाग्नि देते नन्हें हाथ काँपे नहीं थे, सब रो रहे थे... देखा देखी वह भी रो पड़ा था। तब वह नहीं जानता था जीवन और मृत्यु के बारे में। पर इधर एक वर्ष के कालखण्ड में वह बहुत कुछ जान गया था... बड़ा जानकार हो गया था नन्हा जीतू।

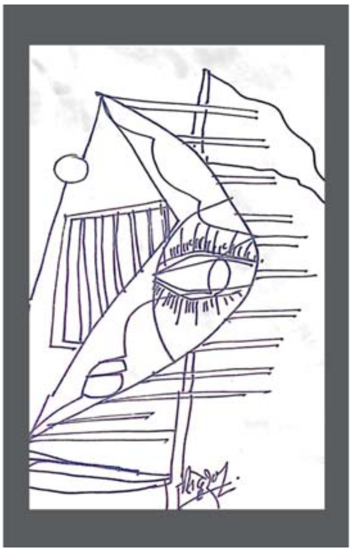

'ऐसी क्या मजबूरी थी... जो अम्मा उसे छोड़कर चली गयी थी... ये भी न सोचा उसके जाने के बाद तनजाये बेटे का क्या होगा? कैसे रह पायेगा वह उसके बिना? कक्का–कक्की के प्यार, मान–मनौव्वल के बाद भी वह कहाँ एक पल चैन से रह पाया था। हर पल हीड़ता हृदय अम्मा के लिए कलपता रहा था... और दूसरी ओर अम्मा का पाषाण हृदय..... कैसे छोड़ गयी अम्मा उसे?... कैसी अम्मा है उसकी, जो उसे छोड़ गयी? जीतू के बाल मन में गहरे तक पैठ बना चुके थे ये प्रश्न।

प्रारम्भ में सभी कहते–मनाते, ''बेटा जीतू तोई मताई आ जेहे, जैसे बा पैला जात्ती मम्मन लो, नन्ना के संगे... और दो चार दिना में आ जात्ती वैसई आ जैहे।'' तब अम्मा के जाने पर वह कक्की की गोद में दुबका सोया सुकून पा जाता था। अम्मा का विछोह ज्यादा न सालता था पर इस बार का अम्मा का जाना... सदा के लिए जाना था... यह धारणा जाने कैसे उसके बाल मन में धीरे–धीरे घर करती गयी थी। सभी के कथन–वचन कि 'जल्दी और जरूर अम्मा आयेगी' उसे मिथ्या लगने लगे थे... वह समझ चुका था कि अब अम्मा उसके पास लौटकर कभी नहीं आयेगी।

श्रीपत कक्का की साइकिल पर बैठते जीतू चिहुँक उठा, ''अम्मा हाँ... येई साइकिल पे बिठारे लाहें... कऔ कक्का?... और उनकी बकसिया...?'' बाल मन चिन्तित हो उठा।

''बकसिया, भौजी अपनी गोदी पे रख लेहे।'' श्रीपत जीतू की चिन्ता दूर करते बोला।

साइकिल चलाते श्रीपत के मस्तिष्क में बीते दिन घूम गये। क्या वह भौजी को चले जाने देता?... हम उम्र होने के बाद भी माँ–सा स्नेह रखती थीं। कुसुम से छिटका रहता था, वह। भौजी ने ही समझा–बुझाकर मेल कराया था। भैया को गुज़रे साल भर भी नहीं बीते थे कि जीतू के मामा ने दौंदरा मचा दिया। हर पन्द्रहिया भौजी को लिवाने पहुँच जाना फिर वापसी में मुश्किलें खड़ी करना जीतू के चालाक मामा की फितरत बन गयी थी। फलस्वरूप बात पंचायत तक पहुँच गयी... और फिर उस दिन सारी हदें पार हो गई। जीतू के दुष्ट मामा ने भरी पंचायत में ब्रह्मास्त्र–सा चला दिया। देवी–सी भौजी और उसके बीच अवैध सम्बंधों के कुवचनों के सामने उसे काठ–सा मार गया... और सारा आवेश गुस्सा–विरोध वह पी गया था उस समय। मुँह से बोल नहीं निकले... भौजी के मान–सम्मान के सामने वह किंकर्तव्यविमूढ़–सा बिना कुछ बोले, ईश्वर के सहारे भौजी को वहीं छोड़ जीतू को अपने साथ लेकर चला आया था। उस दिन वह निरीह गाय–सी भौजी की आँखों से आँखें नहीं मिला सका था।... आज भी उसे इस बात का रंज था कि वह भरी पंचायत से क्यों ऐसे ही चला आया था?

बाद में पता चला था कि बिना पंचों का फैसला सुने जीतू का मामा भौजी को पंचायत भवन से सीधे अपने संग लिवा ले गया था... और महीना भी नहीं बीता था कि भौजी के मायके से खबर आयी थी... भौजी के दूसरे ब्याह की... जिसके आसार जीतू के मामा के कृत्यों से पहले से ही मालूम पड़ रहे थे।

वह जानता था, दुष्ट भाई के सामने भौजी की एक न चली होगी। जुआरी शराबी भाई ने लोभ लालचवश विधवा बहन को बाप की उमर के दोजा आदमी को ब्याह के नाम पर बेच दिया था। यह भी सुनने में आया था कि पन्द्रह बीघा जमीन और नकद एक लाख रुपया पा गया था, कुलघाती भाई... और गाय–सी सीधी भौजी भुखमरी की कगार पर पहुँच रहे भाई और उसके परिवार के लिए बलि चढ़ गयी। अपनी नियति को कोसती, अंतहीन दुःख–वेदना लिए ब्याह गयी बेचारी नर पशु के साथ।

इधर जीतू साइकिल पर बैठा इतरा रहा था, मन की उमंगों के साथ... अम्मा की ढेर सारी स्मृतियाँ आज फिर उसके मन मस्तिष्क में ताज़ा हो आयीं थीं। अम्मा का स्नेह, दुलार उसका एक पल का भी विछोह अम्मा को सहन नहीं था। खुद छिपकर अम्मा को परेशान कर देता था वह... कमरे कमरे उसे ढूँढती अम्मा के सामने वह एकाएक छिपे स्थान से निकलकर सामने जा पहुंचता तब अम्मा उसे अपनी छाती से चिपका लेती... उसका माथा चूमती... बलैया लेतीं... रात सुलाते समय लोरी–कहानी सुनाती और 'सोजा बारे वीर' लोरी की पंक्तियाँ 'दोई दूध पियो मोरे बारे वीर' सुनते–सुनते वह ब्लाउज के बटन खोल देता... फिर अम्मा के आँचल पर सिर रख सो जाता। जीतू की आँखें नम हो आयीं... आँसू बूँद बन लुढ़क आए गोरे गालों पर...

श्रीपत ने बालक जीतू की हिचकी सुनी। ''काय जीतू... रो रओ का बेटा?'' श्रीपत ने साइकिल रोक ली, जीतू को नीचे उतारा फिर गोद में ले लिया और साफी से उसके आँसू पोंछ दिये। ''कक्का! अम्मा की बोत याद आ रई''... कहते–कहते बिलख उठा जीतू। 'मान जाओ बेटा...सबरो करखा गालन पै फैला लओ... थोड़ी रस्ता और रे गयी... फिर भौजी के अंगाउ रो लियो लला।' कहते–कहते श्रीपत का भी गला भर आया।

चरखारी स्टेट का प्राचीन सहस्त्र श्री स्वामी गोबर्द्धन्नाथ जू मंदिर। वर्षों से यहाँ प्रत्येक वर्ष कार्तिक मास में भगवान श्री कृष्णजी के नाम से गोबर्द्धन का मेला लगता चला आ रहा है। मंदिर प्रांगण के सामने व पीछे पक्के घाट के विशाल तालाब बने हैं। जिसके स्वच्छ जल में तल तक जाता सूर्य प्रकाश। जल में तैरतीं–दिखतीं रंग–बिरंगी मछलियाँ मनोरम दृश्य उपस्थित करतीं, तालाब के घाट से कुछ दूर खिले कमल के फूल, हरी पुरेन मेले की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे।

श्रीपत जीतू को साथ लिए मंदिर प्रांगण में आ गया। यहीं पर भौजी से मिलना तय हुआ था। मेले में धीरे–धीरे आने वालों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। आसपास के गाँवों से लोग साइकिल, बैलगाड़ी, ट्रैक्टर इत्यादि साधनों से आ रहे थे। मंदिर में दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। झूलों की चरमराहट, ग्राहकों को लुभाते दुकानदारों के तेज बोल उससे तेज लाउडस्पीकरों की गूँजती आवाजें... चारों ओर चहल–पहल के साथ मेला अपने चरम पर पहुँच रहा था।

भौजी की राह हेरते–हेरते श्रीपत को एक–एक पल भारी पड़ रहा था। यही हाल जीतू का हो रहा था। चाचा–भतीजा बेहाल से कई–कई बार पूरे मंदिर प्रांगण में घूम फिर आये थे। सहसा श्रीपत को मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ते

शिवबाबू दिख गए। शिवबाबू भौजी से उम्र में कुछ वर्ष बड़े किन्तु रिश्ते में अब वह भौजी के दामाद लगते थे सीधे–सच्चे, देवता पुरुष उन्हीं से विनती की थी श्रीपत ने। मताई–बेटा की मिलाई कराए खातिर। शिवबाबू का सहारा ले सीढ़ियाँ चढ़ रहीं थीं भौजी। जीतू भी अपनी अम्मा को सीढ़ियाँ चढ़ते अपलक देख रहा था। उसकी आँखें अम्मा को देख डबडबा आयीं। उसका मन हो रहा था... वह ऊपर से नीचे की ओर उड़ जाए और अम्मा उसे अपनी गोद में ले लें।

वह अभी यह सोच–देख ही रहा था कि श्रीपत कक्का ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और मंदिर की सीढ़ियाँ उतरने लगे। ''भौजी...'' इसके आगे कुछ न कह सका श्रीपत, पैर छूते गला भर आया। जीतू अपने कक्का की गोद से स्वतः उतर अपनी अम्मा के पैरों से लिपट गया।

''श्रीपत भैया...जीतू मोरो बेटा...'' पूत को छाती से चिपकाए गोद में लिए विलाप करती जीतू की अम्मा वहीं बैठ गयी। माँ–बेटे का रुदन देख न सके श्रीपत और शिवबाबू। दोनों की आँखें छलछला आयीं दूसरी ओर मुँह करके दोनों ने अंगोछे से अपने–अपने आँसू पोंछ लिए। इस कारुणिक दृश्य को देखकर करुणानिधि की आँखें भी पसीजे बिना न रही होंगी। भौजी जीर्णकाय, कमजोर दिखीं श्रीपत को।

''क्या कहें?... श्रीपत... कितनों अन्याय करो विधाता ने. .. देवी जैसी स्त्री के साथ... इतनी कम उमर में... बेचारी हाँ का का देखने पड़ रओ... कसाई भाई की का कहें और का कहें अपने शराबी कबाबी–दुष्ट ससुर की करतूत हाँ.... भर्राए गले शिवबाबू बोले जा रहे थे और श्रीपत मौन उनके कंधे पर सिर रखे हिचकी भर रहा था।

कुछ देर बाद वे सब ऊपर मंदिर के गर्भगृह के सामने आ पहुँचे। भगवान कृष्ण के गोबर्द्धन पर्वत उठाये दिव्य स्वरूप के दर्शन पा सभी धन्य हुए। प्रसाद ग्रहण किया और मंदिर के प्रांगण में आ गये। श्रीपत दौड़कर मेले से गरमागरम जलेबी और समोसे ले आया। सभी ने प्रसाद के बाद जलेबी और समोसे खाये, पानी पिया। फिर सभी साथ–साथ मेला घूमे, जीत के लिए शिवबाबू व श्रीपत ने उसकी पसंद के अनेक खिलौने खरीद दिये, मेले में घुमाया, चिड़ियाघर दिखाया, एअरगन चलवाई, जादू का खेल और नाचती पतुरियाँ दिखलाईं।

''अम्मा अब हमाए संगे चलियो। सब याद करत तुम, गडया ने बछड़ा दओ जैस भी बया गयी... दोनऊ के संगे खयालत हों मैं।''

रोना–धोना छोड़ जीतू खूब बतिया रहा था अपनी अम्मा से और उसकी अम्मा हिचकी–हिलकी भर, बार–बार चिपका लेती थी जीतू को अपने हिये से। उसे मालूम था बेटा कुछ पल बाद फिर बिछुड़ जायेगा और फिर कब मिलेगा पता नहीं? ....पर बेटे को कुछ मालूम नहीं था...कि उसकी अम्मा घड़ी दो घड़ी उससे मिलने आई हैं... सत्यता से अनभिज्ञ वह नन्हा बालक अपनी अम्मा को पाकर फूला नहीं समा रहा था। वज्र–सा हृदय चाहिए था...देखने वालों को... विधाता भी रो रहे होंगे इस दृश्य को देखकर।

जीतू अपनी अम्मा से लिपटा रोते हुए चीत्कारें मार रहा था... गोद से उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था... हार–हार जा रहे थे शिवबाबू और श्रीपत।

माँ–बेटे को एक दूसरे से कैसे अलग करें? ईश्वर उन्हें कभी क्षमा नहीं करेगा..... वे दोनों माँ–बेटे को एक दूसरे से सदा के लिए अलग करने का घोर पाप जो कर रहे थे। अन्ततः बिलखते भतीजे को श्रीपत ने जबरन अपनी गोद में ले लिया और पुत्र के लिए कलपती अपनी सास को शिवबाबू ने सम्भाल लिया।

मेले में आए लोग–लुगाई इस कारुणिक दृश्य को देख कुछ समझते कुछ न समझते से एक ओर ठिठके खड़े कयास लगा रहे थे। सारे फल–मिठाई–खिलौने जीतू ने पहले ही गुस्से से परे फेंक दिये थे। ''लाला! अब कबहूँ न लाइयो जीतू हाँ..... मौसे मिलाउन, मैं न सह पेहों लाला!. इतनी पीरा...इतनो दरद.... ठीक से राखियो मोरे मोड़ा हाँ... ओ मोरी मताई कैसे जिये अब हम... जीतू के बिना.... मैं जी न पैहों लाला.... करेजो फटो जात मोरो ओ मोरो बेटा रे...''

शिवबाबू का संकेत पा श्रीपत रोते–बिलखते–मचलते जीतू को अपनी गोद में लिए उस ओर बढ़ गया, जहाँ उसकी साइकिल खड़ी थी।

अपने कक्का की गोद में चिंघाड़ते बेटे को और न देख सकी विरह–वेदना से पुत्र के लिए हीड़ती माँ....और शिवबाबू के सम्भालते वहीं भूमि पर बेसुध हो गिर पड़ी। ◆

पता : 1/251ए, विराट खंड, गोमतीनगर, लखनऊ–226010

मो. : 7607333001

आदमख़ोर

❑ सुशांत सुप्रिय

अक्सर आप अपने ड्राइंग–रूम के सोफे या बेडरूम के बिस्तर की सुरक्षा में बैठ कर टी.वी. पर जंगली जानवरों पर बने कार्यक्रम देख कर खुश होते हैं। ये कार्यक्रम आपको सुंदर सपनों से लगते हैं। टी.वी. स्क्रीन पर जंगल बड़ा मनमोहक और लुभावना लगता है। टी.वी. पर शेर, बाघ और तेंदुए भी केवल बड़े आकार की बिल्लियाँ लगती हैं जो आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकतीं। आप इन जंगली जानवरों के रहन–सहन और शिकार करने के तौर–तरीक़ों का बारीकी से अध्ययन करने वाले इन कार्यक्रमों को सराहते हैं। इन्हें देखकर आप रोमांच से भर जाते हैं, लेकिन यदि एक दिन अचानक आप स्वयं को उस भयानक जंगल के बीचोंबीच पाएँ तो? यदि आप के चारों ओर खूँख़ार आदमख़ोर घूम रहे हों तो? यदि एक दिन आपके सारे सुंदर सपने दुःस्वप्नों में बदल जाएँ तो?

तो वहाँ एक घर है जिसमें मैं अपनी पत्नी और बेटी के साथ रहता हूँ। मेरी बेटी को डायरी लिखने का शौक़ है। इस शौक़ की प्रेरणा उसे अपने दादाजी से मिली होगी, क्योंकि मेरे पिता भी डायरी लिखते थे।

मेरी बेटी हमारे घर की रौनक़ थी। जब वह घर में होती तो फिजा में ख़ुशबू होती थी। जब वह घर में होती तो घर का माहौल ख़ुशनुमा होता था। जब वह घर में होती तो बातें ख़त्म ही नहीं होती थीं। जब वह घर में होती तो घर इंद्रधनुषी रंगों से भरा होता था। वह हम सब को एक सूत्र में बाँधे रहती। उसका होना मेरे और उसकी माँ के जीवन को अर्थ देता था।

लेकिन इधर कुछ सालों से मेरी बेटी नेहा के स्वभाव में बदलाव आ गया है। पहले वाली शोख़, बातूनी, बिंदास लड़की की जगह गम्भीर, चुप रहने वाली, अन्तर्मुखी लड़की ने ले ली है। मैंने उसकी हँसती हुई आँखों को उदास और भयभीत आँखों में बदलते हुए देखा है। मैंने उसके भीतर के वसंत को पतझड़ होते हुए देखा है। मैंने एक भरी–पूरी नदी को केवल रेत–भर रह जाते हुए देखा है।

मेरी बेटी नेहा पहले ऐसी नहीं थी। वह शुरू से ही बेहद निडर थी। एक बार स्कूल में

उसने अपने से बड़ी कक्षा में पढ़ने वाले एक लड़के को सरेआम इसलिए थप्पड़ मार दिया था क्योंकि उस लड़की ने मेरी बेटी को छेड़ने की बेहूदा हरकत की थी।

हालाँकि नेहा शुरू से ही बेहद मिलनसार और हँसमुख लड़की थी, लेकिन वह दो–टूक शब्दों में सही को सही और ग़लत को गलत कहने की हिम्मत रखती थी। उसमें ग़लत बात का विरोध करने का साहस था।

नेहा अपने स्कूल–कॉलेज की एथलेटिक्स की टीम और हॉकी की टीम की सक्रिय सदस्य थी। साथ ही वह बेहद ओजस्वी वक्ता भी थी। भाषण और वाद–विवाद प्रतियोगिताओं में उसने कई ट्रॉफियाँ जीती थीं।

साहसी वह इतनी थी कि बचपन में भी वह गली के कटहे, आवारा कुत्तों को पत्थर मार कर भगा देती थी। प्रायः बच्चे जिन चीज़ों से डरते हैं, उनमें से कोई भी चीज़ उसे नहीं डरा पाती थी। चाहे वह अँधेरा हो, बिच्छू हो, छिपकली हो, चूहे हों या तिलचट्टे और झींगुर हों, मेरी बेटी बचपन से ही इन सब के भय से मुक्त थी।

एक बार बरसात के मौसम में हमारे घर में एक साँप घुस आया। बेटी तब कॉलेज में पढ़ती थी। मैं घर पर नहीं था। मेरी बेटी ने एक डंडे की मदद से साँप के फन के पीछे से पकड़ लिया। फिर उसने साँप को एक बोरी में डाला और पास के रिज के जंगल में ले गई । उसने साँप को वहाँ छोड़ दिया।

जब कभी मैं दुःखी या उदास होता, नेहा मुझे हौसला देती। उसकी मौजूदगी मुझे हिम्मत देती। कई बार उसके देखने का, बात करने का अंदाज़ा भी हवा में जैसे मेरा नाम लिख जाता और मेरे जेहन के बंद खिड़की–दरवाज़े खोल जाता। उसकी उपस्थिति मात्र से जैसे पास पड़ी मोमबत्तियाँ जल जातीं और मैं अँधेरे से उजाले की ओर आ जाता। उसकी मौजूदगी भर से जैसे हमारे घर को पंख लग जाते और वह अपनी नींव छोड़कर उड़ने का आभास देने लगता। छंद–सी थी वह मेरे जीवन की कविता में। ऐसी थी मेरी बेटी।

कई बार मुझे दफ्तर के काम से कई–कई दिनों के लिए शहर से बाहर जाना पड़ता था, लेकिन बिटिया के रहते मुझे उसकी या उसकी माँ की कोई चिंता नहीं होती थी।

मेरी पत्नी भूत–प्रेतों से बहुत डरती है, हालाँकि मुझे भूतों के अस्तित्व में कोई यक़ीन नहीं। मेरी बेटी नेहा भी बचपन से ही भूत–प्रेतों के डर से बेख़ौफ थी। एक बार कॉलेज के कुछ दोस्तों से उसकी शर्त लग गई कि वह आधी रात में शहर के क़ब्रिस्तान में जा कर दिखाए। उन दिनों मैं ऑफिस के काम से मुंबई गया हुआ था। मेरी बेटी बीच रात में उठी। उसकी माँ सोई हुई थी। उसने मकान को बाहर से ताला लगाया और वह अमावस की उस काली रात में अकेली चलती हुई क़ब्रिस्तान पहुँच गई। वहाँ पहुँच कर उसने अपने दोस्तों को फोन किया कि वह क़ब्रिस्तान में बैठी है। यदि किसी दोस्त को उसकी बात पर यक़ीन नहीं तो वह इसी समय स्वयं वहाँ आ कर इस बात की पुष्टि कर सकता था, लेकिन उसका कोई भी दोस्त इस बात की पुष्टि के लिए उस आधी रात के समय क़ब्रिस्तान में पहुँचने की हिम्मत नहीं जुटा सका था।

बाद में मुंबई से लौटने पर जब मुझे अपनी पत्नी से यह सारी बात पता चली तो मैंने बेटी को बुलाकर डाँटा भी, किंतु मन–ही–मन मैं भी उसकी निडरता का लोहा मान गया।

जब कभी मैं दुःखी या उदास होता, नेहा मुझे हौसला देती। उसकी मौजूदगी मुझे हिम्मत देती। कई बार उसके देखने का, बात करने का अंदाज भी हवा में जैसे मेरा नाम लिख जाता और मेरे जेहन के बंद खिड़की–दरवाजे खोल जाता। उसकी उपस्थिति मात्र से जैसे पास पड़ी मोमबत्तियाँ जल जातीं और मैं अँधेरे से उजाले की ओर आ जाता। उसकी मौजूदगी भर से जैसे हमारे घर को पंख लग जाते और वह अपनी नींव छोड़कर उड़ने का आभास देने लगता। छंद–सी थी वह मेरे जीवन की कविता में। ऐसी थी मेरी बेटी।

मैंने 'थी' का प्रयोग इसलिए किया है क्योंकि मेरी बेटी अब वह पहले वाली बेटी नहीं रही। वह अब बदल चुकी है। छोटी–सी आहट पर भी अब वह चौंक जाती है। अपनी परछाईं से भी अब वह डर जाती है। कई महीनों से वह हँसी

नहीं है। उसकी आँखों में हर वक़्त भय का अजगर कुंडली मारे बैठा रहता है।

दरअसल इस बीच बिटिया के साथ कुछ हादसे हो गए। जब नेहा कॉलेज के अंतिम वर्ष में थी तो वह गर्मी की छुट्टियों में अपने चाचा के पास रहने के लिए गई। उस का चचेरा भाई उसी की उम्र का है। दोनों में खूब छनती थी। हर राखी पर या तो वह हमारे घर आ जाता या मेरी बेटी अपने चाचा के यहाँ जा कर उसे राखी बांध आती।

लेकिन उस बार गर्मी की छुट्टियों में जब वह अपने चाचा के पास गई तो उसे अपने चचेरे भाई के हाव–भाव कुछ बदले हुए लगे। एक रात जब वह सो रही थी, उसका चचेरा भाई उसके कमरे में घुस आया। उसने शराब पी रखी थी। उसने कमरे का दरवाज़ा भीतर से बंद कर दिया और मेरी बेटी से जबर्दस्ती करने की कोशिश की। मेरी बेटी ने इसका विरोध किया। उसने शोर मचाया। तब उसके चाचा–चाची ने आ कर उसे बचाया।

किंतु इस घटना ने मेरी बेटी को भीतर से हिला दिया। जब वह घर लौटी तो बहुत देर तक मेरे सीने से लगकर फफक–फफक कर रोती रही और तिनके–सी काँपती रही। जाहिर है, इस घटना ने इंसान की अच्छाई और संबंधों की पवित्रता पर उसके विश्वास को गहरी ठेस पहुँचाई थी। मैं स्वयं स्तब्ध था। पहली बार मुझे अपनी बेटी के 'लड़की' होने पर फिक्र हुई थी। मैं अपनी नन्हीं कली को आँधियों से बचाना चाहता था। मैं अपनी चाँदनी को ग्रहण के रास्ते से हटाना चाहता था।

धीरे–धीरे मैंने अपनी बेटी को समझाया कि हर जगह अपवाद होते हैं। मैंने उसे बताया कि दुनिया में अब भी अच्छे लोग बहुतायत में हैं। तभी तो यह जीवन जीने योग्य है। धीरे–धीरे मेरी बेटी फिर से सहज होने लगी। अब वह विश्वविद्यालय में पढ़ने लगी थी। जब एम.ए. की परीक्षा का परिणाम आया तो मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। नेहा पूरे विश्वविद्यालय में प्रथम आई थी।

एम.फिल् समाप्त करने के बाद नेहा ने अपने प्रिय शिक्षक डॉ. रामस्वरूप के निर्देशन में पीएच.डी. करने का निर्णय लिया। वह अपने गुरुदेव के गुण गाते नहीं थकती थी। डॉ. रामस्वरूप उसके श्रद्धेय थे। वे प्रकांड विद्वान् थे। वे अपने छात्र–छात्राओं से बच्चों–सा स्नेह करते थे। वे पिता–स्वरूप थे। वगैरह–वगैरह। मैं भी फिर से आश्वस्त महसूस करने लगा था।

लेकिन एक दिन नेहा देर से घर लौटी। उस का चेहरा पीला पड़ गया था और वह थर–थर काँप रही थी। उसके कपड़े कई जगह से फट गए थे। उसके हाथ–पैरों पर नाखूनों की खरोंच के निशान थे। रोते हुए उसने अपनी माँ को बताया कि उसके पीएच.डी. गाइड डॉ. रामस्वरूप ने उसे शोध–कार्य के सिलसिले में अपने घर बुला कर उसके साथ ज़बरदस्ती करने की कोशिश की। उन्होंने अपनी पत्नी को पहले ही मायके भेज दिया था।

जब मैंने यह सब सुना तो मैं सन्न रह गया। मैं समझ सकता था कि इस आघात से मेरी बेटी का क्या हाल हुआ होगा। जब इंसान का इंसानियत पर से भरोसा उठ जाता है, वह घड़ी उसके जीवन की सबसे भयावह घड़ी होती है। यही हाल मेरी बेटी का हुआ था। इस घटना ने उसे फिर से बुरी तरह झकझोर दिया था। उसके पुराने घाव हरे हो गए थे।

मैंने तुरंत पुलिस व विश्वविद्यालय के अधिकारियों से सम्पर्क किया। किंतु उस दुष्ट की पहुँच ऊपर तक थी। उसे सस्पेंड और गिरफ्तार करवाने के लिए मुझे कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, उसके बारे में मैं एक पूरी कहानी और लिख सकता हूँ।

इधर नेहा की हालत बहुत ख़राब हो गई थी। वह किसी को भी देखती तो डरकर चिल्लाने लगती। इस बार मुझे उसे मनोचिकित्सक के पास ले जाना पड़ा। उसे सम्भलने में कई महीने लग गए। धीरे–धीरे नेहा फिर से सामान्य होने लगी थी। यह उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन हम दोनों बाप–बेटी टी.वी. देख रहे थे। चैनल बदलते–बदलते मैंने डिस्कवरी चैनल लगा लिया। उस पर आदमखोर शेरों, बाघों और तेंदुओं का कार्यक्रम दिखाया जा रहा था। हमने कई बार ऐसे प्रोग्राम साथ–साथ देखे थे। लेकिन कार्यक्रम के बीच में ही नेहा की तबीयत ख़राब होने लगी। मैंने देखा, उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उसके हाथ–पैर ठंडे पड़ गए थे और वह थर–थर काँप रही थी। दिसम्बर की सर्द रात में भी उसके माथे पर पसीना छलछला आया था।

"पापा, प्लीज चैनल बदल दो।" उसकी आवाज़ जैसे किसी गहरे कुएँ के तल में से आ रही थी।

"पर क्यों ?" मैं कुछ समझ नहीं सका।

"प्लीज़, पापा, प्लीज़।" अब वह काँपते हुए अस्फुट स्वर में कह रही थी। मैं बेहद डर गया। मैंने फटाफट टी.वी. बंद किया। उसे पानी पिलाया और बिस्तर पर लेटाया। बहुत देर बाद ही वह फिर से सामान्य हो पाई। उसके बाद एक–दो बार और टी. वी. के उन्हीं चैनलों पर ऐसे ही आदमख़ोर जंगली जानवरों के प्रोग्राम देखते हुए नेहा की तबीयत फिर से ख़राब हो गई। तब जा कर मैं कुछ–कुछ समझ पाया कि क्या हो रहा था।

वैसे मैं किसी दूसरे का पत्र या डायरी उसकी अनुमति के बिना कभी नहीं पढ़ता किंतु यहाँ मुझे मामले की तह तक जाना जरूरी लगा। इसलिए और कोई चारा नहीं था। मैं बेटी की मदद करना चाहता था। वृक्ष सदा चाहता है चिड़िया को बचाना। एक दिन जब नेहा कहीं बाहर गई हुई थी, मैंने उसकी डायरी ढूँढ़ निकाली। मैंने डायरी के कुछ पन्ने पलटे और एक जगह जा कर मेरी निगाह अटक गई। ऐसा लगा जैसे मैं गहरे पानी में डूब रहे किसी व्यक्ति की असहाय छटपटाहट सुन रहा हूँ। डायरी में वहाँ लाल स्याही से बेटी ने लिखा था–"यह दुनिया भयावह जंगल है। इसमें रहने वाला इंसान जंगली जानवर बन गया है। एक वहशी दरिंदा। भूत–प्रेत, साँप–बिच्छू या अन्य जानवर उतने ख़तरनाक नहीं हैं जितना ख़तरनाक इंसान है और इंसान नाम का यह जंगली जानवर अब आदमख़ोर बन गया है। वह अन्य इंसानों को, अपने भाई–बंधुओं को ही खाने लगा है। हे ईश्वर, तेरी बनाई इस सृष्टि में हमें इन आदमख़ोरों से कब मुक्ति मिलेगी ?"

इधर नेहा की हालत बहुत ख़राब हो गई थी। वह किसी को भी देखती तो डरकर चिल्लाने लगती। इस बार मुझे उसे मनोचिकित्सक के पास ले जाना पड़ा। उसे सम्भलने में कई महीने लग गए। धीरे–धीरे नेहा फिर से सामान्य होने लगी थी। यह उन्हीं दिनों की बात है। एक दिन हम दोनों बाप–बेटी टी.वी. देख रहे थे। चैनल बदलते–बदलते मैंने डिस्कवरी चैनल लगा लिया। उस पर आदमखोर शेरों, बाघों और तेंदुओं का कार्यक्रम दिखाया जा रहा था। हमने कई बार ऐसे प्रोग्राम साथ–साथ देखे थे। लेकिन कार्यक्रम के बीच में ही नेहा की तबीयत ख़राब होने लगी। मैंने देखा, उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उसके हाथ–पैर ठंडे पड़ गए थे। और वह थर–थर काँप रही थी। दिसम्बर की सर्द रात में भी उसके माथे पर पसीना छलछला आया था।

(आपका जीवन सपनों की एक श्रृंखला है। आपके सपनों में रंग–बिरंगे पक्षी हैं। आपके सपनों में तितलियाँ, जुगनू और इंद्रधनुष हैं। आपके सपनों में मेमने, ख़रगोश और हिरण हैं। दूर से वे बहुत सुंदर लगते हैं। आप उनसे आकर्षित हो कर उनके पास जाते हैं। वे आपको बड़े मनमोहक लगते हैं। बड़े सलोने। आपको पूरा विश्वास हो जाता है कि वे ईश्वर की बनाई श्रेष्ठ कृतियाँ हैं और तब अचानक एक वासंती दिन वे सभी मेमने, ख़रगोश और हिरण अपने खोलों में से निकल कर बाहर आ जाते हैं। उन्हें देख कर आप सन्न रह जाते हैं। दरअसल वे सभी आदमख़ोर जानवर होते हैं। आपके प्रिय सपने दुःस्वप्नों में बदल जाते हैं।

आप अपनी जान बचाने के लिए बेतहाशा भागते हैं। सामने आपको अपने सबसे अच्छे मित्र का घर दिखता है। आप भगवान् का लाख–लाख शुक्र अदा करके उस घर में घुस जाते हैं लेकिन उस घर के भीतर जाने पर आपको पता चलता है कि जिसे आप अपना सबसे अच्छा मित्र समझ रहे थे, दरअसल वह भी एक आदमख़ोर है। आप वहाँ से भी भाग खड़े होते हैं। फिर आप अपने शुभचिंतकों, गुरुजनों और रिश्तेदारों के दरवाज़े खटखटाते हैं किंतु आप उनमें से भी कइयों को आदमख़ोर बना हुआ पाते हैं।

भागते–भागते आप पृथ्वी के अंतिम छोर तक पहुँच जाते हैं। अब इंसान की अच्छाई पर से आपका मोह भंग हो चुका है। अब पूरी इंसानियत पर से आपका भरोसा उठ चुका है। अब यह धरती आपको आदमख़ोरों की बस्ती लगने लगी है। यही बात मुझे सबसे ज़्यादा डराती है।) ◆

पता : ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम्, गाजियाबाद –201014 (उ.प्र.)

मो. : 8512070086

जड़ें और पंख

❑ श्वेता विकास

उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गाँव 'बड़ागांव' में, हरिओम अपने परिवार के साथ रहता था। किसान परिवार से ताल्लुक रखते हुए, हरिओम का जीवन खेत, हल और मिट्टी से जुड़ा था। उसकी पत्नी सुशीला सादगी पसंद महिला थी, जो अपने घर और बेटे की परवरिश में लगी रहती थी। उनका बेटा अर्जुन, गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ता था। वह पढ़ने में बहुत तेज़ था।

हरिओम दिन भर खेत में मेहनत करता और रात को थका–मांदा घर लौटता। सुशीला उसके लिए रोटियाँ सेंकती और अर्जुन को पढ़ाने में मदद करती। उनका सपना था कि अर्जुन बड़ा होकर गाँव से बाहर निकले, पढ़–लिखकर बड़ा आदमी बने। एक दिन स्कूल से लौटते वक्त अर्जुन ने अपने पिता से पूछा, "बाबा, शहर के लड़के कैसे होते हैं?"

हरिओम ने हँसते हुए जवाब दिया, "शहर के लड़के हम जैसे ही होते हैं बेटा, पर उनके पास ज्यादा साधन होते हैं लेकिन मेहनत करने वाला कहीं भी चमकता है।" सुशीला बोली, "अर्जुन, तुम्हारे बाबा ने अपनी पूरी जवानी खेतों में गंवा दी, अब तुम्हारी बारी है मेहनत करके नाम कमाने की।" अर्जुन ने सिर हिलाया, "हाँ अम्मा, मैं ज़रूर कुछ बनकर दिखाऊँगा।" अर्जुन की 10वीं की परीक्षा में अच्छे अंक आए। उसका दाख़िला शहर के एक अच्छे कॉलेज में हो गया लेकिन दाख़िले की फीस और रहने का खर्चा हरिओम की पहुँच से बाहर था।

सुशीला ने अपनी शादी की पुरानी चूड़ियाँ निकालीं और बोली, "इनका क्या करना अब? बेटा पढ़ेगा, तो ही ये चूड़ियाँ चमकेंगी।" हरिओम की आँखें भर आईं, पर उसने कुछ नहीं कहा। उस दिन उसने तय कर लिया कि चाहे खेत गिरवी रखने पड़े, पर बेटे की पढ़ाई नहीं रुकेगी। अर्जुन शहर गया। वहाँ की चमक–धमक, तेज़ रफ़्तार और प्रतियोगिता ने उसे चौंका दिया, लेकिन उसने हार नहीं मानी। कॉलेज में वह सबसे पहले आता और सबसे देर तक लाइब्रेरी में बैठता। कभी–कभी जब पैसे ख़त्म हो जाते, वह भूखा ही सो जाता। माँ से कुछ कहता नहीं था, क्योंकि जानता था कि घर के हालात अच्छे नहीं हैं। माँ रोज़ मंदिर जाकर बेटे के लिए दुआ करती और पिता खेतों में और ज़्यादा मेहनत करने लगे। एक बार अर्जुन को एक प्रतिष्ठित कंपनी में इंटर्नशिप का मौका मिला लेकिन जाना था दिल्ली और यात्रा व रहने का

खर्च फिर से दीवार बनकर खड़ा हो गया। उस रात सुशीला ने चुपचाप अपनी पायल भी बेच दीं। हरिओम ने पुराने ट्रैक्टर को बेच दिया।

अर्जुन को जब यह पता चला तो उसने माँ–बाप से पूछा, "आप दोनों इतना कष्ट क्यों उठाते हैं मेरे लिए?" हरिओम ने मुस्कुरा कर कहा, "बेटा, हम जड़ें हैं, और तू पंख। पंख उड़े, तभी तो पेड़ का नाम होता है।" अर्जुन की मेहनत रंग लाई। इंटर्नशिप के दौरान उसकी प्रतिभा को कंपनी ने पहचाना और उसे वहीं नौकरी का प्रस्ताव दे दिया। अब अर्जुन महीने का अच्छा पैसा कमाने लगा। पहली तनख्वाह से उसने सबसे पहले माँ के लिए सोने की चेन और पिता के लिए नया ट्रैक्टर खरीदा। जब वह पहली बार गाँव लौटा तो पूरे गाँव ने उसका स्वागत किया जैसे कोई विजेता लौट कर आया हो। अर्जुन की सफलता ने गाँव के बच्चों को प्रेरणा दी। उसने गाँव में एक छोटी सी लाइब्रेरी और कंप्यूटर सेंटर बनवाया, जहाँ गरीब बच्चों को मुफ्त पढ़ाया जाने लगा। सुशीला और हरिओम ने भी वहाँ सेवा देनी शुरू कर दी। एक दिन एक बच्चा अर्जुन से पूछ बैठा, "भइया, आप इतने बड़े आदमी हो गए, फिर गाँव क्यों आए?"

अर्जुन मुस्कुराया और बोला, "जिस मिट्टी ने मुझे खड़ा किया, क्या उसे छोड़ सकता हूँ?" कुछ वर्षों बाद अर्जुन एक बड़ी मल्टीनेशनल कंपनी का मैनेजर बन गया। लेकिन हर साल वह गाँव लौटता, माँ के हाथ की रोटियाँ खाता और पिता के साथ खेत में कुछ देर हल चलाता। उसके लिए असली सफलता वही थी– माँ की गोद, पिता की छाया और गाँव की मिट्टी। ◆

पता : 554 जी/78, दामोदर नगर, आलमबाग, लखनऊ–226005
मो. : 7905653654

लघुकथा

सच्चा ग्राहक

❑ पुष्पेश कुमार पुष्प

ठेले पर बेच रहे सब्ज़ी वाले के पास आकर लोग सब्ज़ी ख़रीद रहे थे। वह लोगों को सब्ज़ी देने के बाद बिना नोट को जांचे–परखे ले रहा था और शेष रुपये लौटा भी रहा था।

तभी एक व्यक्ति जल्दबाज़ी में आया और बोला– "एक किलो आलू दो और दो सौ रुपये का नोट सब्ज़ी वाले के हाथ में थमा दिया। सब्ज़ी वाला बिना आलू तौले नोट को उलट–पलट कर देखने लगा और नोट वापस करते हुए बोला– "साहब ! यह नोट बीच से फटा हुआ है। मैं इसे नहीं ले सकता। दूसरा नोट हो, तो दीजिए।"

ग्राहक नोट लेकर बिना कुछ बोले चला गया। तभी एक और ग्राहक आया। एक किलो सब्ज़ी खरीदी और पचास रुपये का नोट थमा दिया। सब्ज़ी वाले ने बिना जांचे–परखे नोट अपनी जेब में रख लिया और शेष रुपये लौटा दिये। वहीं पास खड़ा एक ग्राहक यह सब देख रहा था। वह आश्चर्यचकित होकर बोला– "क्यों भाई ? इसके पहले जो ग्राहक आया उसके नोट को उलट–पुलट कर देखा, किंतु इस ग्राहक के दिये रुपये तुमने बिना जांचे–परखे रख लिए। ऐसा क्यों ?"

सब्ज़ी वाला मुस्कुराकर बोला– "भाई साहब ! जो सच्चे और ईमानदार ग्राहक होते हैं, वे सब्ज़ी खरीदने के बाद रुपये देते हैं। जो ग्राहक सब्ज़ी ख़रीदने से पहले रुपये दे, उसका मन गंदा होता है। उसके मन में कहीं न कहीं चोर छुपा होता है। वह इसलिए पहले रुपये थमा देता है ताकि जो कुछ होना होगा सब्ज़ी लेने के पहले ही हो जाएगा। अपने अशांत मन को शांत करने के लिए वैसे लोग ऐसा करते हैं। लेकिन जो ग्राहक ईमानदार और खोटे रुपये लेकर नहीं आते, वे सब्ज़ी ख़रीदने के बाद रुपये देते हैं। इसलिए विक्रेता कुछ ख़रीदने के पहले दिये रुपये की जांच–परख अवश्य करता है।" ◆

पता : विनीता भवन, निकट–बैंक ऑफ इंडिया, काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक, बाढ़–803213 (बिहार)
मो. : 09135014901

डॉ. शोभा दीक्षित 'भावना' की ग़ज़ल

डॉ. शोभा दीक्षित 'भावना'

विधाता ने रची है सृष्टि पर आधार नारी है।
मधुरता है उसी से प्रेम का संसार नारी है।।

उसी से ज़िंदगी है और हम उस ज़िंदगी से हैं।
मनुज की पीढ़ियों का विश्व में विस्तार नारी है।।

कलुष को काट देती है उजाले की कटारी से।
मिले यदि प्यार सच्चा प्यार पर बलिहार नारी है।।

बहन, माँ, प्रेमिका, बेटी वधू है और देवी भी।
हमारे स्नेह के रिश्तों का शुभ श्रृंगार नारी है।।

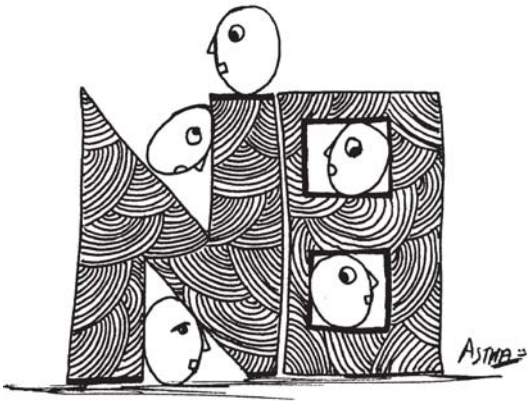

वही उंगली पकड़ कर सृष्टि को चलना सिखाती है।
स्वयं ईश्वर कोरचती है वो रचनाकार नारी है।।

उसे मत तौलिये अपनी हवस वाले तराजू पर।
बूंद है ओस की तो वक्त पर अंगार नारी है।।

त्याग है, राग है, सुख है समर्पण है अनल भी है।
तुम्हारी भावना का सौ गुना विस्तार नारी है।।

◆

पता : 60 दयाल फोर्ट, विष्णुपुरी–3,
अलीगंज, लखनऊ–226022
मो. : 9454410576, 9140945022

कुमकुम शर्मा की तीन कविताएँ

कुमकुम शर्मा

स्त्री

पति की शक्ति
पुत्र की हिम्मत
और बेटी का आधार हूं मैं,
मैं चिन्तित हूं,
मेरे पांवों तले की
इंच–इंच सरकती ज़मीन
थमने का नाम ही नही लेती

वो दो सबल हाथ

आज भी जब कभी
घेरती है निराशा की अंधेरी छाया,
आज भी जब कभी
पांव शिथिल पड़ते हैं,
मन उदास होता है,
ज़िन्दगी की रफ़्तार
थमी–थमी सी लगती है,
वो दो सबल हाथ
मुझे आज भी उठाते हैं
मेरी पीठ थपथपाते हैं,
वो शब्द मुझे आज भी शक्ति देते हैं।
बेटा थकने वाले कभी जीता नहीं करते,
उठो! दुनिया उगते सूरज को प्रणाम करती है,
कोशिश करती हूं।
न थकूं, न रूकूं
चलती रहूं ? बस चलती रहूं,
करती हूं प्रयास
उगते सूरज–सा प्रकाश
भर सकूं अपने भीतर
प्रकाश ईमानदारी का,
सत्य का, प्रेम का
पर पता, नहीं कब कौन कहां से
मुझे धकेल,
आगे निकल जाता है, मुझसे पहले ही
मंजिल को पकड़ता है, अंगूठा दिखाता है,
मानों चिढ़ा रहा हो
दुनिया में रहना है, तो
दुनिया के साथ चलना सीखो
मैं उठती हूं,
चलती हूं,
थकन बहुत है?

पग डगमगाते हैं,

जी करता है, बस,

यहीं विराम हूँ

इस यात्रा को

पर नहीं,

उन दो हाथों का स्पर्श

कंधों पर ताज़ा हो उठता है,

वे शब्द फिर गूंजने लगते हैं,

उम्मीद की कोई किरण

आंखों के आगे छाए अंधेरों के बीच

एक लकीर सी खींच जाती है,

मैं अपनी यात्रा का

फिर करती हूं शुभारम्भ

ताकि चलती रहूं, अनथक अविराम।

(पिता को याद करते हुए तो गत वर्ष हमारे बीच नहीं रहे)

मन्दिर

मन्दिर के घंटों, वेद मंत्रों की गूंज

के बीच भी एक वाक्य है

जो मेरे अन्तस में,

हर पल गूंजता है।

अहं ब्रह्मास्मि।

और मेरी दृष्टि

एक अलौकिक प्रकाश से

दीप्त हो उठती है।

मेरे पांवों में है।

अजेय शक्ति

मुझे विश्वास है

अभी देने के लिए

बहुत कुछ है मेरे पास

बांटने के लिए बहुत सा है नेह

और मैं उठ खड़ी होती हूं,

ताकि इन रिश्तों को

पिला सकूं पुनः संजीवनी

जो मेरे आस–पास बिखरे हैं

यूँ ही बस यूँ ही।

◆

पता : जानकीपुरम, लखनऊ–226021

मो. : 8960000962

जिज्ञासा सिंह की दो कविताएँ

जिज्ञासा सिंह

संकल्प

यूँ अपरिचित क्यूँ खड़े
दृढ़निश्चयों के द्वार तुम,
है समय को देखना क्या
तोड़नी जब वर्जनाएँ।
सुप्तता को छोड़ लंबी
चादरों की तान त्यागो
मार छींटे चक्षु धो लो
देखनी संभावनाएँ।।
लोग कुछ आएँगे रथ पे
बैठ के घोड़े जुते
बन कृपण मत खड़े होना
हाथ ले कालिख पुते
न उन्हें शिरोधार्य करना
न झुकाना शीश तुम
एक पल बस देख लेना
मार्ग की अवधारणाएँ।।

हो सुनहरी चमक गर भी
वो नहीं तुमपे फबेगी
छू उन्हें लेना नहीं कंचन हैं
कालिख छींट देगी
रूप लाखों रंग अगणित
आत्मा बस एक सबकी
है यही अवमूल्य जिसपे
हैं टिकी संकल्पनाएँ।।

जीर्णता या शीर्णता हो
पल्लवित पुष्पित धरा हो
खोल दृग देखो कहीं पर
कुसुम आसव जो झरा हो
खिल रही संभावना के
ताम्रपल्लव गुँथे गुँचे
अंकुरित हों बीज नव
मय चेतना परिकल्पनाएँ।।

प्रदूषण

ताना—बाना सब उलझा है।
आज सवेरा बुझा—बुझा है।।

उड़े नहीं हैं पंख सुकोमल
चिड़ियों की आवाज़ सुनी क्या
अम्बर से तपते सूरज ने
अपनी कोई बात कही आ
दाना—दाना बिखरा है
पर पंछी कोई नहीं चुगा है।।

जो आकाश अभी था मेरा
कोई उसे उड़ाता दूर
बिन सूरज के किरणें उतरीं
रह—रह होतीं चकनाचूर
जहरीली एक हवा बह रही
धुआँ—धुआँ हो गई दिशा है।।

पिंजर लिए खड़ा है कोई
भरा हुआ उसमें कोलाहल
सृष्टि का एक—एक प्राणी
झाँक देखता व्याकुल बिह्वल
मनोदशा की दिशा कह रही
खाईं गहरी भरा कुआँ है।।

◆

पता : सी—137, इन्दिरा नगर, लखनऊ 226016
मो. : 9415410164

डॉ. यशोधरा भटनागर की चार कविताएँ

डॉ. यशोधरा भटनागर

गौरैया का आर्तनाद

सुनो!
मैं वही हूँ, गौरैया
जो कभी तुम्हारे आँगन में चहकती थी
नीम की शाखों पर झूलती
मिट्टी में नहा महकती थी
और तुम्हारी हँसी के संग
गीत मधुर बुनती थी

पर अब...
अब वो आँगन नहीं
वृक्ष नहीं, वृक्षों की छाँह नहीं
केवल पत्थर ! पत्थरों की कठोर साँसें हैं
जिनमें मेरा घोंसला घुट जाता है

मैं उड़ती हूँ खोज में—
तिनकों की, दानों की,
पर चारों ओर कंकरीट के जंगल हैं
जहाँ हवा भी ठहरी हुई है
और धूप भी बेजान—बेबस है

क्या तुम्हें याद है वह दोपहरी,

जब तुमने अपनी मुट्ठी में
मेरे लिए धान भरे थे?
आज मैं लौटकर आई हूँ
पर मेरी चहचहाहट से पहले
मोबाइल टॉवर्स की चुप चीखें
मुझे चुप करा देती है

मैं पूछती हूँ तुमसे–
क्या मेरा आँगन लौटेगा?
क्या वह नीम फिर पनपेगा?
क्या मिट्टी फिर से
मुझे अपने गीत सुनाएगी?

या फिर,
मैं भी एक भूली हुई
कहानी बन समा जाऊँगी
तुम्हारी यादों की
किसी धूल भरी किताब में...?

कटा हुआ दरख़्त

कटा हुआ दरख़्त हरहराया है
कौन सींचता है इसकी जड़ों को
कौन हवा दे रहा बिन पत्तों के
कटे हुए इस मज़बूत तने को

हर बार कट कर भी फूटती रहीं शाखें
हर आँधी में भी डोलती रहीं डालें
हर बार कटकर भी
कैसे जी उठता है यह दरख़्त?

हर वार के बाद भी यह कैसे खड़ा है
क्यूँ शाखों पर फिर उजाला खिला है
शायद ख़्वाब इसे जिलाए रखते हैं
शायद जख़्म इसे जगाए रखते हैं

इसका हर दर्द दवा बन
इसको जिला जाता है
इसके आँसू ही इसे पोसते हैं
उम्मीद की धूप इसे हरियाती है

हर दर्द बस इक परछाईं है
हौसलों की जमीन में गहराई है
हर कटाव पर नया मोड़ मिलता रहा
हर गिरावट से दरख़्त संभलता रहा

कुल्हड़ वाली चाय

माँ के हाथों की रोटी जैसी
दादी की मीठी लोरी जैसी
अपनेपन की खुश्बू वाली
कुल्हड़ वाली चाय

कुल्हड़ के सौंधेपन में
अपना ही एक एहसास बसा

चाय की हर इक चुस्की में
मानो माटी का रस है पगा

कुल्हड़ का स्पर्श,वो गर्माहट
बचपन की धूप में बैठी दादी
चौके में चूल्हे की आँच सरीखी
चाय में घुल जाती वो यादें प्यार

पहली बारिश की खुशबू जैसी
माटी की भीनी महक कैसी
मिट्टी से जो निकला,मिट्टी में लौटा
बस यही तो है जीवन का सार

न कोई चमक, न कोई शान
बस सादगी ,सौंदर्य अनूठा
देश की मिट्टी ,देश की खुशबू
मनभावन कुल्हड़ की चाय

स्त्री

वह एक नदी, जो बहती रही
चट्टानों से टकराकर भी राह गढ़ती रही
कभी झरने–सी चंचल, कभी सागर–सी गहरी
हर रंग में ढली, फिर भी हँसती रही

वह एक दीप, जो जलता रहा,
अंधेरों को चीर, घर–आँगन संवारता रहा।
तेल कम हुआ, बाती भी छोटी हुई,
पर उजाला कभी कम न हुआ।

वह एक पेड़, जो छाँव देता रहा,
अपने घाव छुपाकर भी फल देता रहा।
हर ऋतु में झड़ता, हर पतझड़ सहता,
फिर भी हरियाली का वचन निभाता रहा।

वह एक आइना, जो सच दिखाता रहा,
पर ख़ुद दरकने से न डरता रहा।
टूटा, बिखरा, पर चमक न खोई,
हर चेहरे में ख़ुद को खोजता रहा।

स्त्री–सिर्फ एक रिश्ता नहीं,
नदी, दीप, पेड़ और आइना है।
हर रूप में, हर स्वर में,
वह बस प्रेम और शक्ति का दर्पण है।

◆

पता : 152, अलकापुरी, (जैन मन्दिर के पीछे)
देवास, मध्यप्रदेश–455001
मो. : 9425306554

कविता

समरपाल सिंह की एक कविता

समरपाल सिंह

बनाता हूँ सुगम पथ सबके लिए
चीर कर वक्ष धरा का कुदाल से
व्यतीत करता हूँ पूस की शीत भरी रातें
ओढ़ कर फटी गूदड़ी सहता कुहरे की घातें।

शरीर में बचा ही क्या है बस पीठ,
पेट तो भूख के हवाले
कन्नी–वसूली से खड़ी करता हवेलियाँ,
उनके लिए जो व्यंग्य देते हैं मुझे।

बसर करता हूँ फूँस की झोपड़ी में,
बिछाता हूँ काँटे स्वयं के लिए
क्योंकि मैं मजबूर हूँ,
क्योंकि मैं मज़दूर हूँ।

जेठ की तपन में पूस की तुहन में
कुदाल ले हाथ में अन्न की आस में
करता हूँ प्रहार धरा के वक्ष पर
एक आस लिए एकान्त में
चित्त भारी है आख़िर क्लान्त मैं।

कहने को मैं राष्ट्र निर्माता,
अपने वोट से ही सरकारें बनाता,
बना रहता हूँ अधिकारों से वंचित,
हरदम पसीनें से संचित
क्योंकि मैं मजबूर हूँ,
क्योंकि मैं मजदूर हूँ

करता हूँ जीवन भर श्रम
हलक खुश्क है अंजुल नीर को
कभी जाना नहीं क्षीर को
सामने हिमगिरि सा लक्ष्य है
यही मेरे मन का दंश है
क्योंकि मैं सुनने का मजबूर हूँ
क्योंकि मैं मज़दूर हूँ।

बसन हीन हूँ अर्थहीन हूँ
आत्मशक्ति से भरा हुआ।
कुदाल को गुरू मानकर
चलाता हूँ सौभाग्य मानकर।
यह भी न हो तो क्या......?
मज़दूर हूँ तो क्या
मजबूर हूँ तो क्या
लाचार भी हूँ तो क्या
हाड़ ही हाड़ है तो क्या
नैतिक पतित तो नहीं हूँ।
क्योंकि मैं मजबूर हूँ
क्योंकि मैं मजदूर हूँ।

तन से दुबला हूँ मैं
पर आत्मा से फौलाद हूँ मैं,
हाथ पैर चलाकर करता हूँ बसर मैं
इसलिए तो जीवित हूँ मैं
एक शिल्पकार हूँ मैं
श्रम से भरपूर हूँ मैं
इसलिए मजदूर हूँ मैं।

अपमान बना आभूषण मेरा
तिरस्कार ही जीवन है
घोर अपेक्षा निंदा मेरी
करते घर आंगन में हैं
मंज़िलें दर मंज़िलें ईंट चढ़ाता
पग–पग धक कलेजा करता
फक्क प्राण भी उड़ जाते हैं
लेकिन श्रम से पीछे हटना
नहीं सिखाया गया है मुझको
श्रम करने को मजबूर हूँ
क्योंकि मैं मज़दूर हूँ।

◆

पता : पिदोरा रोड, मारहरा, एटा
मो. : 9456037283

डॉ. इन्दुमती सरकार की एक कविता

डॉ. इन्दुमती सरकार

अभिशप्ता का विद्रोह

वह उगी थी उस घने अंधकार में,
जहाँ सूरज की किरणें भी डरकर
मर जाती थीं,
जन्म से ही लिख दिया गया था
उसके माथे पर–
शापित, दलित, अछूत, पददलित।
माँ की गोद में ही सुन ली थी
वह कर्कश गाली, जो बँध गई उसके नाम के साथ,
बाप के हाथों में देखा था वह घाव,
जो छलक आया था
जाति के खंजर से।
स्कूल की दहलीज़ पर
रोक दिया गया जब उसे,
शिक्षक ने कहा– यहाँ नहीं तेरी जगह,
जा, झाड़ू पकड़, बना अपना भाग्य!
किताबों की भूख जलकर राख हो गई।
फिर जवानी आई तो देह बनी बाज़ार,
उम्र से पहले ही झुर्रियों ने
घेर लिया चेहरा,
वह रोज़ मरती, रोज़ जीती,
पर पेट की आग ने
कभी न छोड़ा साथ।
एक रात जब उसकी बेटी को
खींच लिया
गाँव के मनचलों ने
धर्म के नाम पर,
तब टूटा वह बाँध–
उसकी चुप्पी का,
डर का, लाचारी का।
वह उठी,
मशाल बनकर जलती हुई,
चीखी– अब नहीं सहूँगी!
पत्थरों से उगले गए थे जो ज़हर,
आज वही बने उसके हथियार।
अब वह नहीं वह पुरानी अभिशप्ता,
वह तो फीनिक्स है,
जलकर नई हो गई,
उसकी आँखों में अब दहकता है सूरज,
हाथों में लिख रही है इतिहास।
जब तक रहेगा यह संघर्ष,
वह गूँजेगी हर गली में–
मैं हूँ, मैं जीऊँगी,
मैं बदल दूँगी इस व्यवस्था को!
उसकी बेटी अब पढ़ती है किताबें,
लिख रही है अपना नाम ख़ुद,
नहीं झुकेगी वह, नहीं टूटेगी,
क्योंकि उसकी माँ ने रास्ता
बना दिया है।
और धरती के कोने–कोने से
उठ रही हैं हज़ारों आवाज़ें–
हम चुप नहीं, हम डरेंगे नहीं,
हमारी लड़ाई अब तबाही लाएगी
तुम्हारे महलों पर।

◆

पता : RZG85 A गली नंबर 3, राज नगर,
पार्ट 2, पालम कॉलोनी, नई दिल्ली
मो. : 9711310913

मानवीय जीवन की वेदना को उकेरती कहानियाँ

❑ जयराम सिंह गौर

कल्पना मनोरमा अब न केवल कथाकार अपितु साहित्यकार के रूप में भी स्थापित हो चुकी हैं। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा कविता से प्रारंभ की और लगभग साहित्य की हर विधा में लेखन कर रही हैं। कल्पना मनोरमा लीक से हटकर सोचने और रचने वाली लेखिका हैं। अभी हाल ही में उन्होंने पुरुष विमर्श पर दो कहानी संग्रह ''कांपती हुईं लकीरें'' और ''सहमी हुई धड़कनें'' का संपादन किया है। जो वर्तमान में समाज के उस हिस्से का दुःख बयान करता है, जिसे सदियों शक्तिशाली और क्रूर माना जाता रहा है। खैर! अब बात उनके सद्यः प्रकाशित कथा संग्रह ''एक दिन का सफर'' की, जिसे नई किताब प्रकाशन समूह के अनन्य प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। इस संग्रह में बारह विविधवर्णी कहानियाँ हैं जो 152 पृष्ठों में समाहित हैं।

इस कथा संग्रह के फ्लैप पर वरिष्ठ कथाकार जयशंकर द्वारा लिखी टिप्पणी का एक अंश उद्धृत करना चाहूंगा, ''कहानियों में इधर की स्त्रियों के जीवन की प्रताड़नाओं को नए संदर्भों में, नए आयामों के साथ देखा जा सकता है। इन कहानियों में आते हुए स्त्री पात्रों की चिंताओं, आकांक्षाओं और यातनाओं का स्वरूप, इधर का समकालीनता का बोध लिए हुए नज़र आता है।''

मैं भी सहमत हूँ। कल्पना मनोरमा महिला होने के नाते महिलाओं की समस्याओं को नज़दीक से देखती हैं, इसलिए उनका इस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है पर ऐसा नहीं है कि उनका ध्यान केवल महिलाओं की समस्याओं तक ही सीमित है, नहीं। इस संग्रह की कहानी ''कोचिंग रूम'' को देखिए। इसकी पात्र पिंकू अपनी सौतेली माँ के दुराचारों से प्रताड़ित और पिता द्वारा उपेक्षित होती है। कहानी की मुख्य पात्र सुचेता शर्मा अपनी विद्यार्थी पिंकू सिंह बुंदेला की तमाम समस्याओं को न केवल समझना चाहती है, बल्कि उसकी काउंसिलिंग कर जीवन की तरफ मोड़ने में तत्पर भी है। कहानी ''कोचिंग रूम'' कल्पना मनोरमा की लिखी संवेदनशील और विचारोत्तेजक कहानी है, जो न केवल शिक्षा संस्थानों व शिक्षकों के बदलते रवैए की बात करती

है, बल्कि अव्वल आने के लिए बढ़ते दबाव, माता पिता की लापरवाही, विकास की अंधी दौड़, स्त्री शोषण, वर्ग भेद और मनोवैज्ञानिक संघर्षों को भी उजागर करती है। एक उत्तम विचार की शिक्षिका सुचेता अपनी विद्यार्थी पिंकू को संत्रास से निकाल लेती है। इस कहानी की इतनी शानदार बुनावट है, प्रकृति से तादात्म्य, कहानी पाठक को अपनी लपेट में ले लेती है। पाठक अनजाने सुचेता और पिंकू का जीवन जीने लगता है।

कहने का मतलब कथा संग्रह "एक दिन का सफर" में बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री–पुरुष के साथ कल्पना ने प्रकृति यानी पेड़–पौधों की सम्वेदना पर भी कलम चलाई है।

अब संग्रह की शीर्षक कहानी को देखें। ''एक दिन का सफर'' सचमुच कामकाजी महिला का एक दिन का सफर ही तो है, जिसे वह पूरा का पूरा रोज़–रोज़ जीती है। कैसी विडंबना कि उसके पास सभी के लिए समय तो है पर उस समर्पित स्त्री के लिए पति, बेटे और बेटी किसी के पास समय नहीं है। उसकी मेमोग्राफी की रिपोर्ट न लाने के लिए सबके पास अपने–अपने बहाने हैं। कहानी की नायिका सपना की मनोदशा और उसके धैर्य का इतना अद्भुत चित्रण हुआ है कि दृश्य सामने चलते हुए दिखाई देते हैं।

''एक दिन का सफ़र'' कल्पना मनोरमा द्वारा लिखित यह कथा असाधारण मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक यात्रा को दर्शाती है। यह कहानी एक महिला पात्र के इर्द–गिर्द घूमती है, जो नौकरी के साथ घर और परिवार की धुरी पर ख़ुद को रखकर चल रही है। एक दिन के भीतर अपनी व्यक्तिगत ज़िन्दगी से लेकर सामाजिक दायित्वों और आत्मिक संघर्षों से वह जूझती है। कहानी में वह सुबह घर के रोज़मर्रा के कामों से दिन की शुरुआत करती है, लेकिन जैसे–जैसे दिन बढ़ता है, रास्ता घर तक पहुंचता है, उसके जीवन के अंदरूनी द्वंद्व, समाज की अपेक्षाएँ और रिश्तों की उलझनें उभर कर सामने आती हैं।

यह 'सफ़र' वास्तव में बाहरी नहीं, बल्कि स्त्री के एक आत्ममंथन की यात्रा है। जहाँ वह अपने अतीत, वर्तमान और संभावित भविष्य को एक दिन में जीती है। साथ में नए समय की बदलती स्त्रियों को देखती, सुनती और खिसियाती है। इस यात्रा में वह अपनी पहचान, इच्छाओं और दबावों के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करती है। अंततः यह "एक दिन" उसके लिए बोध और बदलाव का प्रतीक बनता है। एक ऐसा मोड़, जहाँ वह अपने भीतर की स्त्री को पहचानती है और निर्णय लेती है कि वह जीवन को अब अपने दृष्टिकोण से जिएगी, न कि सिर्फ दूसरों की अपेक्षाओं पर। यह रचना शांत, लेकिन प्रभावशाली स्वर में यह संदेश देती है कि कभी–कभी एक दिन ही ज़िंदगी को बदलने के लिए काफी होता है।

''पहियों पर घर'' एक रेलवे अधिकारी फीफा डबराल की पत्नी ललिता की कहानी है। जो पति के बार–बार तबादलों से त्रस्त है। ये कहानी स्त्री के लगाव, स्थान, वस्तुओं और व्यक्तियों के साथ उसके भावनात्मक जुड़ाव की भी है। एक घर छोड़कर दूसरा घर और फिर तीसरा... घर के सभी लोग भले मस्त हैं, लेकिन इलाहाबाद से सहारनपुर का स्थानांतरण ललिता के लिए दुःखद घटना है। कहानी उन तथ्यों का उद्घाटन करती है, जो बाज़ारवाद के विकास से उपजी पीड़ा है। जब स्त्री भीतर से बुझ चुकी हो तो प्रकृति का लालित्य भी कुछ असर नहीं करता। कथा नायिका ललिता भी शहतूत के पेड़ से घृणा करती है। यानी कल्पना मनोरमा की यह कहानी ''पहियों पर घर'' आधुनिक जीवनशैली और पारिवारिक ताने–बाने के बीच पिसते बच्चों के मनोभावों तथा स्थितियों का संवेदनशील, व्यंग्यात्मक मार्मिक चित्रण करती है। कहानी यह दिखाती है कि कैसे आज की भागदौड़ भरी ज़िंदगी में परिवार एक साथ होते हुए भी भावनात्मक रूप से बिखर रहा है, कैसे मानसिक 'मोबिलिटी' ने सहृदय स्थायित्व को खा लिया है। साथ ही प्रकृति और मनुष्य की आपसदारी में पड़ती दरार को एक कामवाली जो आदिवासी इलाके की है, उसके जीवन में पेड़ों की भागीदारी और शहरी मिजाज़ की स्त्री की मनोग्रंथियों को नज़दीक से दिखाया गया है।

''हँसो, जल्दी हँसो'' इस संग्रह की एक मार्मिक और तल्ख़ कहानी है। जो समाज में फैली कृत्रिमता, स्त्री की विडंबनाओं और 'हँसी' जैसे सहज मानवीय भाव को 'अनिवार्य सामाजिक अभिनय' में बदलने की त्रासदी को

उजागर करती है। ''हँसो, जल्दी हँसो'' कहानी एक स्त्री पात्र के इर्द–गिर्द घूमती है, जिसे समाज, परिवार और संबंधों की तमाम उलझनों के बीच 'हँसती हुई और सहज' स्त्री बने रहने का बोझ ढोना पड़ता है। यह हँसी कोई खुशी से उपजी हुई प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि एक 'उपलब्ध हँसी', जिसे हर हाल में दिखाना ज़रूरी है। नानी रूपी पात्र को लगता है कि चाहे भीतर कितना ही दर्द क्यों न रहे लेकिन उसे हँसकर अपने परिवार को पीड़ामुक्त रखना है। मानो आंखों से अंधी नानी ने 'हँसी' को जीवन की तरह ओढ़ लिया है। यहां पर हँसी प्राकृतिक भावना नहीं, बल्कि एक सामाजिक विद्रूपता को छिपाने का आवरण बन जाती है। क्योंकि पुरुष समाज हो या स्त्री की खुद की औलाद, स्त्री से अपेक्षा करती है कि वह सदा 'खुश' रहे। चाहे वह भीतर से कितनी भी टूटी हुई क्यों न हो। कहानी दिखाती है कि कैसे स्त्रियाँ अपनी असली भावनाओं को दबाकर हंसमुख चेहरा पहन लेती हैं। यह कहानी व्यंग्यात्मक शैली में समाज के उस ढांचे पर प्रश्न उठाती है, जहाँ स्त्री का दुःखी होना असुविधा माना जाता है और खुश दिखना कर्तव्य। "हँसो, जल्दी हँसो" कहानी मनोरंजन के लिए नहीं लिखी या पढ़ी जाएगी, बल्कि इसके पाठकों के मन में यह कहानी एक सवाल ज़रूर छोड़ेगी।

''नमक भर कुछ और'' कथा एक साधारण और निम्नस्तर से ऊपर उठे परिवार की है। ग़रीब तबके वाले जीवन प्रसंगों में रची बसी स्त्री जब अपने बेटे के द्वारा कमाई माध्यम वर्गीय ज़िंदगी में पहुंचती है तो खुश होने के बजाय ज्यादा सेंसटिव हो जाती है। उसका रहन सहन सब बदल जाता है, लेकिन जिस अभावमय जीवन को उसने जिया है, उसमें रह रहे व्यक्तियों के प्रति वह अभी भी बेहद संवेदनशील है। मानो वह चाहती है कि जिस तरह से उसका जीवन बदला, दुनिया से भी ग़रीबी हट जानी चाहिए तभी उसे असली खुशी मिलेगी। माने स्त्री के अस्तित्व, त्याग की सूक्ष्म पीड़ा को कल्पना मनोरमा ने बेहद बारीकी से बुना है। यह कहानी स्त्री की ज़िंदगी में सब कुछ ठीक होते हुए भी ''कुछ'' अधूरा रह जाता है, और वही 'कुछ' उसकी आत्मा की सबसे बड़ी पुकार बन जाता है, को दिखाती है। यह कहानी पाठक को भीतर तक छूती है क्योंकि यह किसी एक स्त्री की नहीं, बल्कि असंख्य स्त्रियों के भीतर पलती चुप इच्छाओं की आवाज़ है।

''आख़िर मोड़ पर'' कहानी का विषय आम नहीं। कल्पना की संवेदनशील दृष्टि और समाज में कुछ बेहतर होने की कामना को दर्शाती है। अभी तक वृद्धाश्रम में तड़पते माता पिता की कई कहानियां पढ़ीं मैंने, लेकिन इस कहानी में लेखिका ने रिश्तों के जुड़ाव और मानवीय आंतरिकता के वृहद रूप का चित्र खींचा है। इस कथा में स्त्री के प्रति स्त्री के प्रेम को दिखाया गया है। साथ में उस बात का खंडन है कि दो पीढ़ियों के बाद स्त्री का अस्तित्व मायके से ख़त्म हो जाता है। इस भ्रम को भी कहानी ने तोड़ा है। ये भी कि भारतीय युवा विदेशों में जाकर असंवेदनशील हो जाते हैं। सुहानी नामक पात्र लंदन में रहती है, लेकिन जब वह अपने पिता के घर इंडिया आती है तब उसे पता चलता है कि पापा की बुआ सत्यवती को उनके बेटे ने वृद्धाश्रम में मरने के लिए छोड़ दिया है। सुहानी पिता की बुआ को वृद्धाश्रम से रिहा करवा कर लंदन ले जाती है। यह कथा आत्मिक, भावनात्मक और जीवन–बोध से भरे क्षण को प्रस्तुत करती है। जहाँ सत्यवती बुआ बेटे के द्वारा ठुकराए जाने के बाद अपने जीवन को लंबे और खोखले सफ़र के निर्णायक मोड़ पर खड़ा पाती है। वह भी मायके की अगली पीढ़ी के माध्यम से। आख़िरी मोड़ कथा सामाजिक समझौते, बेतरतीब इंतज़ार और स्त्री के आत्म–साक्षात्कार की परतों को बेहद सूक्ष्मता से खोलती है। स्त्री की अव्यक्त पीड़ा कहानी में नायिका कोई खुला विद्रोह नहीं करती, न कोई लंबा भाषण देती है। गहरी मगर स्नेहिल चुप्पी, स्मृति और सोच ही उसकी सबसे बड़ी अभिव्यक्ति बनती है।

''कितनी कैदें'' कल्पना मनोरमा की यह अत्यंत संवेदनशील और स्त्री–अंतर्मन को झकझोर देने वाली कहानी है, जो उन असंख्य अदृश्य बंदिशों, सामाजिक बेड़ियों और मानसिक कारागारों को उजागर करती है जिनमें एक स्त्री जीवन भर बंधी रहती है, बिना किसी स्पष्ट शोर के, लेकिन हर पल घुटते हुए। यह कहानी एक ऐसी स्त्री पात्र को केंद्र में रखती है जो समाज, परिवार, परंपरा,

रिश्तों और स्वयं की आंतरिक दुविधाओं से घिरी हुई है। मिन्नी दीदी की मां बाहर से भले स्वतंत्र दिखती है, लेकिन अंदर ही अंदर वह अनेक कैदों से जूझते हुए अपनी बेटी का सहारा नहीं बन पाती। बेटी असमय प्राण गंवा बैठती है। यहाँ 'कैद' का मतलब सिर्फ शारीरिक बंधन नहीं है, बल्कि मन, सोच, इच्छा, आकांक्षा और पहचान की जटिल बेड़ियाँ हैं। वे कैदें जो दूसरों ने यानी माता पिता समाज ने थोपी होती हैं। मिन्नी दीदी नामक स्त्री ने 'कर्तव्य–भावना' के नाम पर चुप्पी ही पहन ली। आत्मपरिचय और घुटन का द्वंद्व इतना कि कहानी की नायिका स्वयं को पहचानने की कोशिश भी नहीं करती। उसे हर मोड़ पर दीवार मिलती है, कभी माँ के रूप में, पिता के रूप में, पति के रूप में, समाज के रूप में। पाठक को राहत तब मिलती है जब कहानी में मिन्नी के समानांतर प्रतिभा को पाता है। प्रतिभा भी सीमाओं को बेवजह नहीं तोड़ती लेकिन बुरी बात का उल्लंघन करना, अपने और अपनों के जीवन को बचा लेना प्रतिभा अपना कर्तव्य समझती है। अपनी बड़ी बहन को नहीं बचा सकी, लेकिन उसकी बेटी को अपने साथ ले आती है। कल्पना मनोरमा की लेखनी इस कहानी में बेहद भीतर तक उतरती है और बिना शोर किए पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है। प्रतीकात्मकता और यथार्थ का संतुलन लेखिका ने प्रतीकों (जैसे खिड़की, दरवाज़ा, मेहराबों आदि) के माध्यम से स्त्री के बंधन को दर्शाया है, जो पाठक के मन में एक दृश्य रूप में उतरते हैं। भाषा सीधी है, लेकिन उसमें अदृश्य गहराइयाँ हैं, जैसे–एक धीमी नदी जिसकी सतह शांत है, पर नीचे बहुत कुछ बह रहा है। ''कितनी कैदें'' यह नहीं कहती कि स्त्री को बाहर भाग जाना चाहिए, कहानी पूछती है कि कब तक स्त्री को अपनी समर्पित भूमिका में ख़ुद को मिटा देना होगा?

''स्त्रियाँ धूमकेतु नहीं होतीं'' कल्पना मनोरमा की यह कथा तेजस्वी और गहरी प्रतीकात्मकता के साथ स्त्री के अस्तित्व, स्वभाव और निरंतरता की पड़ताल करती है। यह कहानी न केवल स्त्री को समझने का आग्रह करती है, बल्कि उसे आकस्मिक चमकदार घटनाओं के बजाय सतत प्रकाश–स्रोत की ओर जाते हुए दिखाती है। ''स्त्रियाँ धूमकेतु नहीं होतीं'' कहानी ऐसी स्त्री पर केंद्रित है, जो समाज में साधारण कर्तव्यनिष्ठ और शांत भूमिका में दिखती है, लेकिन उसके भीतर अपने को जान लेने का अनवरत संघर्ष चलता रहता है। वह सतत सहनशीलता और स्थायित्व की कामना करती है, लेकिन शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि लेखिका स्त्री की उस रूढ़ छवि को तोड़ना चाहती हैं, जिसमें स्त्री को या तो 'विशेष' बनाकर पूजनीय बना दिया जाता है या साधारण कहकर अनदेखा कर दिया जाता है। धूमकेतु एक क्षणिक चमक है। सब जानते हैं। जबकि स्त्रियाँ स्थायी, नियमित, सहज रोशनी का स्रोत जैसी हैं। लेखिका कथा के माध्यम से स्त्रियों को क्षणिक चमत्कार नहीं, बल्कि सतत जीवन–शक्ति समझा जाना चाहिए की माँग करती हैं। कहानी उन छोटी–छोटी बातों को दर्ज़ करती है जिन्हें समाज 'सामान्य' मानता है जैसे बच्चों को संभालना, रसोई चलाना, परिवार को थामे रखना, पति की सेवा करना, लेकिन यह कथा स्त्री के भीतर के उजाले की माँग करती है। वह उजास जो वह ख़ुद भी कभी–कभी नहीं देख पाती है क्योंकि वह हमेशा दूसरों की रोशनी में ख़ुद को मापती रही है। कल्पना मनोरमा की सबसे बड़ी ताकत यह है कि वे साधारण जीवन स्थितियों को यथार्थ और कवित्वपूर्ण प्रतीकों में ढाल देती हैं। इस कहानी में स्त्री के अपने प्रति आत्मिक हो जाने को देखा जा सकता है।

''गुनिता की गुड़िया'' कल्पना मनोरमा की यह कहानी बचपन, स्त्री–भावना, स्वप्न और यथार्थ के बीच झूलती मासूम लड़की की गहरी कहानी है, जो प्रतीकों के माध्यम से बहुत कुछ कह जाती है। यह केवल एक बच्ची और उसकी गुड़िया की कहानी नहीं है, बल्कि समाज की उन अदृश्य संरचनाओं की पड़ताल है जो लड़कियों के मन में बहुत जल्दी घर बना लेती हैं। ''गुनिता की गुड़िया'' कहानी की नायिका गुनिता है, जो बचपन में अपनी गुड़िया हाथों बनाकर एक कलाकार के रूप में मां से सराहना पाना चाहती थी लेकिन उसकी मां स्त्री देह की संरचना को उसकी बेटी जल्दी न समझे, न जल्दी बड़ी हो और न ही किसी कुचक्र में फंसे, देखना चाहती है। जब मां गुड़िया की चोली देखती है तो माथा पकड़ लेती है। उसके बाद कहानी में जो दारुण चित्रण उतरते हैं, उससे पाठक स्तब्ध रह जाता है। जैसे–जैसे कहानी आगे बढ़ती है, पाठक को यह अहसास

होता है कि गुड़िया महज़ खिलौना नहीं, एक प्रतीक है सुरक्षा का, आत्मीयता का और एकांत में सहचर का। गुड़िया गुनिता के लिए उसकी भीतर की आवाज़, उसकी स्वतंत्र इच्छा और भावनात्मक सहारा बन जाती है। जब समाज या परिवार उसे उसकी उम्र, लिंग या व्यवहार को लेकर सीमाओं में बाँधता है, तो उसकी मां गुड़िया को स्त्री अस्मिता से जोड़कर देखती है। मासूम बचपन बनाम सामाजिक संगठन और पौरुष आक्रोश स्त्री के प्रति जकड़ी रूढ़ता को दिखाती है। कहानी बचपन की मुक्त उड़ान और उस पर समाज के अनकहे फिजूल आदेशों के टकराव को बारीकी से पकड़ती है। धीरे–धीरे यह स्पष्ट होता है कि गुनिता की दुनिया पर वयस्कों की इच्छाएँ कैसे हावी हो जाती हैं। वही गुनिता जब दादी बनती है, तब अपनी नातिन को नए ज़माने की गुड़िया से खेलते हुए देखकर अचंभित होती है। लेखिका ने इस कहानी में चार पीढ़ियों की स्त्रियों के रवैए, समझ, उदारता, बाज़ारवाद का कसता शिकंजा और बाल–चेतना को बहुत ही स्वाभाविक और आत्मीय ढंग से उकेरा है। कहानी न अधिक भावुक, न अधिक बौद्धिक माने जीवन की तरह कहानी आगे बढ़ती है और पाठक को मार्मिकता से सराबोर कर देती है।

''जीवन का लैंडस्केप'' कल्पना मनोरमा की यह कथा विचारशील, कलात्मक और आत्ममंथन से भरी हुई रचना है, जो जीवन को केवल घटनाओं का सिलसिला न मानकर एक चित्रमय परिदृश्य के रूप में देखती है। यह कहानी पाठक को जीवन की सतह से उठाकर उसके भीतर की बनावट की ओर ले जाती है। यह कहानी जीवन को ''लैंडस्केप पेंटिंग'' की तरह प्रस्तुत करती है जिसमें रंग, आकृतियाँ, खाली स्थान, धुंधलापन, प्रकाश, छाया, रिश्तों की टूटन, अपनों के द्वारा अपनों को ठगे जाना सबका अपना एक अर्थ है और हर दृश्य पर पाठक मानो ठिठक जाता है। नायिका या केंद्रीय पात्र अपने जीवन को पीछे मुड़कर देखते हुए यह समझने की कोशिश करती है कि उसके जीवन के कौन–कौन से रंग वर्तमान के लैंडस्केप में समाहित हैं और वे कौन से कारण रहे, जिसकी वजह से वह अपना मन चीता हासिल कर पाई? 'लैंडस्केप' जीवन का रूपक है। आत्मा का दस्तावेज़ है। उसमें अच्छे–बुरे अनुभवों के रंग है, कुछ अधूरी आकृतियाँ, कुछ ढँकी हुई रेखाएँ जो 'मैं' को गढ़ती हैं। कहानी अतीत की झलकियों, संबंधों की परछाइयों और वर्तमान की खामोशी को एक साथ पिरोती है। यह एक स्मृति–यात्रा भी है और स्वीकृति की प्रक्रिया भी... पेंटिंग के जैसे ही जीवन में भी रिक्तियाँ अपना महत्व रखती हैं। लेखिका दिखाती हैं कि कभी–कभी जो अधूरा रहा, वही सबसे ज़्यादा असरदार बन पड़ा। कल्पना मनोरमा की भाषा में चित्रात्मकता है जैसे वे शब्दों से नहीं, रंगों से लिखती हों। पाठक हर अनुच्छेद को एक दृश्य की तरह देख सकता है। कहानी का प्रवाह कहीं भी तेज़ नहीं होता। यह धीमी नदी की तरह बहती कथा है, जिसमें हर मोड़ पर कोई भावनात्मक ठहराव है। कहानी में संवादों से ज़्यादा महत्व आत्मसंवाद को मिला है। यह कहानी हमें अपने भीतर की आवाज़ से मिलने के लिए आमंत्रित करती है।

इसी तरह "दुःख का बोनसाई" और "आख़िरी सिगरेट" कहानियां भी मन पर सीधे असर छोड़ती हैं। संग्रह की सभी कहानियों की भाषा सहज, बोधगम्य और प्रवाहमयी है, जो पाठक को सहज ही बांध लेती है। मेरे अनुसार रचनाकार यदि पाठक को अपनी भावभूमि पर उतार लाने में सफल हो जाता है तो यह उसकी सबसे बड़ी सफलता होती है। कथा संग्रह ''एक दिन का सफ़र'' की कहानियों के माध्यम से रचनाकार अपनी बात और संदेश पाठक तक पहुँचाने में सफल रही हैं।

निःसंदेह कहानी संग्रह ''एक दिन का सफ़र'' का कथा जगत में स्वागत होगा। मैं सुश्री कल्पना मनोरमा के लेखकीय सुखद भविष्य की कामना करता हूँ। ◆

समीक्षित कृति : एक दिन का सफ़र
पृष्ठ संख्या : 152
कीमत : 195/–
प्रकाशक : नई किताब प्रकाशन समूह

पता : 180/12 बापूपुरवा कॉलोनी, किदवईनगर,
पोस्ट–टी.पी. नगर, कानपुर–208023
मो. : 7355744763, 9451547042

विस्मृत हो रहे जीवन मूल्यों को सँजोने की जुगत- व्यस्त चौराहे की कहानियाँ

❑ जयशंकर प्रसाद द्विवेदी

अक्सर ऐसा होता है कि व्यक्ति अपने चेतन अवस्था के बाद भी बहुत सी घटनाओं की अभिव्यक्ति नहीं दे पाता है। ऐसी घटनाएँ दिल और दिमाग दोनों जगह स्मृति के रूप में अपना स्थायी निवास बना लेती हैं। अगर ऐसा कुछ किसी लेखक के साथ होता है तो वही स्मृतियाँ साहित्य की किसी न किसी विधा के रूप में पाठकों के समक्ष आती हैं। मीनाधर पाठक जी हिन्दी और भोजपुरी की ऐसी ही सधी हुई लेखिका हैं, जिनकी लेखनी हिन्दी और भोजपुरी दोनों ही भाषाओं को बड़े तल्लीनता के साथ समृद्ध करती चलती चली जा रही है। सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह 'व्यस्त चौराहे' इसी क्रम की एक मिसाल है। इस कहानी संग्रह में कहानीकार मीनाधर पाठक जी अपनी सधी हुई सम्प्रेषण शैली से पाठकों को साक्षात्कार कराती प्रतीत होती हैं। पाने–खोने की आपाधापी में सभी का कुछ न कुछ छूट रहा है, व्यस्तता जीवन की दिनचर्या का अंग बन चुकी है। ऐसे में संवेदनायें दम तोड़ती नज़र आयें, तो चौंकने की बात नहीं है। ऐसी ही संवेदनाओं के एहसास की अभिव्यक्ति हैं 'व्यस्त चौराहे' की कहानियाँ।

मीनाधर पाठक जी के कहानी संग्रह 'व्यस्त चौराहे' में कुल 11 कहानियाँ संकलित हैं, जिसका प्रकाशन 'वनिका प्रकाशन, नई दिल्ली' से हुआ है। कहानी संग्रह का कवर पेज भी एक कहानी की आत्मा से ही लिया गया है, जो कहानी संग्रह के नाम को सार्थकता देता दिखाई दे रहा है। कहानी संग्रह के शुरूआत में एक बात खटकती है, वह यह कि कहानीकार ने पाठकों के समक्ष अपना पक्ष (आत्मकथ्य) इस पुस्तक को लेकर नहीं रखा है। कथाकार ने पुस्तक अपनी माँ को समर्पित किया है, जो नारी शक्ति का नारी के प्रति सम्मान को दर्शाता है। पुस्तक के लिए प्रियदर्शन जी का लिखा फ्लैप मैटर स्वयं में विरोधाभास समेटे हुये है। एक और बात प्रियदर्शन जी क्रिया का बहुबचन (दोस्तियाँ) करते दिखाई देते हैं, जो विद्वता प्रदर्शन का अतिरेक ही है। खैर... !!

कहानी संग्रह की पहली कहानी 'तुम ज़रूर आओगे' कहानी के नायक पीयूष और नायिका प्रिया के बचपन के प्रेम पर आधारित है, जो समय बहाव में एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। किन्तु जब वर्चुअली एक व्हाट्सएप ग्रुप में मिलते हैं, तो उनका पुराना प्यार पुनः अंगड़ाई लेता है। उनकी आपस में फोन से बात भी होती है और नायिका प्रिया उस बातचीत में नायक पीयूष पर तंज भी करती है। किन्तु अचानक दिल का दौरा पड़ने से नायिका की मौत हो जाती है। नायिका की गाँव जाने की इच्छा पूरा करने का जो स्वरूप नायक अख़्तियार करता है, वह वास्तव में पाठक को मर्माहत कर जाता है।

शीर्षक कहानी 'व्यस्त चौराहे' समाज में बुजुर्गों के प्रति हो रहे व्यवहार की ओर ध्यान आकर्षित कराती है। यह कहानी मुख्य पात्र अम्मा और आरोही के इर्द–गिर्द घूमती है। अम्मा के प्रति आरोही का आकर्षण, उसके लिए कुछ न कुछ लेकर जाना और अम्मा से बात करने की चाहत मन में जागृत होना इस कहानी का एक पक्ष है। कहानी का दूसरा पक्ष जब अम्मा की उस स्थिति के बारे में अस्पताल से पता चलता है और अचानक अम्मा वहाँ से गायब हो जाती है। किन्तु दूसरे ही दिन वहाँ कोई दूसरी बूढ़ी स्त्री अपना आश्रय बना लेती है। तात्पर्य यह कि समाज अपने बड़ों के प्रति सम्मान और कर्तव्य से विमुख हो रहा है, इसी की झाँकी है 'व्यस्त चौराहे'।

समाज के स्थापित ढाँचे और रिश्ते को दरकाती कहानी 'एक लम्हा नीद नहीं' पिता–पुत्र के रिश्ते पर प्रश्न खड़ा करती है। इस समाज के कुछ ऐसे लोग जो ख़ुद अपनी संतान की प्रगति में बाधक होते हैं और अंततः संतान के अनिष्ट का कारण बनते हैं। कहानी की नायिका इला ऐसे ही एक पिता–पुत्र के रिश्ते से त्रस्त है। अपने संघर्षों से अपने पति तुषार की मृत्यु के उपरांत बच्चों को योग्य बनाने में कामयाब होती है। इस कहानी में पिता अपने पुत्र को ही नुकसान पहुंचाता है, यह बात अपवाद ही सही किन्तु यह काल्पनिक तो बिल्कुल भी नहीं है।

'रेत के घरौंदे' कहानी कोसी के कहर का एक शब्द चित्र खींचती है। कोसी के प्रकोप की भयावहता को रेखांकित करती है। लोगों के पलायन की बात करती है। साथ ही पीड़ित लोगों के द्वारा कुछ ऐसे कदम उठाने की बात भी करती है, जिसे अमानवीय कहा जाता है। किन्तु यह अमानवीयता भी ज़िंदगी की चाहत में कभी बुरी नहीं लगती , लेकिन पीड़ा बहुत देती है। इस कहानी में त्रासदी है लेकिन प्रेम भी है, जो ज़िंदगी को आगे बढ़ने की संजीवनी देता है।

'काश' एक मार्मिक प्रेम कहानी है, जो उम्र के बदलाव के साथ रिश्तों में बदलाव की बात करती है। कस्बाई/गाँव के आम जीवन की आम कहानी जो जीवन के धरातल की वास्तविकता है, को दर्शाती है। सूरज और दीया का एक साथ स्कूल आना–जाना, एक दूसरे को प्रोत्साहित करना, रूठना–मनाना, फिर बढ़ती उम्र के साथ दूरी और अंत में दोनों की राह अलग। कथाकार की आज के दौर से जोड़ने की कवायद कथानक को समय सापेक्ष करती दिखती है। दूसरे शब्दों में कहें तो काल्पनिकता का सहारा कहानीकार का एक अस्त्र है, जिसे आवश्यकतानुसार वह प्रयोग करता है। जब नाच मंडली का दौर था, तब सोशल मीडिया था ही नहीं लेकिन जितने समयान्तराल की बात कहानी उठाती है, उसमें तो सभी कुछ है। कहानी के अंत में नायक सूरज के दिये गुलदस्ते में पुनः प्रेमपत्र का मिलना और उसके पहले फेसबुक पर एक प्रशंसक के तौर पर मुलाकात कुछ उलझन पैदा करती है। फिर भी कहानी शुरू से अंत तक पाठक को बांधे रखती है।

'एक अधूरी तस्वीर' जीवन में घटित होने वाले त्रासदी की कहानी है। जहां प्रेम और अवसाद के साथ–साथ थ्रिल और सस्पेंस भी है। कथाकार ने अपनी बात बड़ी सहजता से रखने के बाद भी पाठकों की रुचि का पूरा ख़्याल रखा है। कहानी पाठक को पूरी तरह जोड़ पाने में सक्षम भी है।

'पलकों के पीछे' कहानी पति द्वारा पत्नी पर घरों में होने वाले दमन की दास्तान कहती है। साथ ही यह भी

सचेष्ट करती है कि संबंधों में शंका को जगह नहीं देनी चाहिए अन्यथा ज़िंदगी नर्क से भी बदतर हो जाती है। सुख–चैन सब छिन जाता है। कहानीकार मीनधर पाठक ने बहू का अपने सास के प्रति समर्पण, चिंता की बात और आज के समाज में इसकी ज़रूरत को पाठक के समक्ष रखा है। 'हुआ बिहान', 'टूटती सीमाएं' और 'साँझ की लाली' कहानी अपना कथ्य पाठक के समक्ष बखूबी रखने में सक्षम हैं।

इस संग्रह की अंतिम कहानी 'अनुत्तरित प्रश्न' वास्तव में कुछ ऐसे प्रश्न खड़ा करती है। जिसका आसानी से अनदेखी किया जाना असंभव जान पड़ता है। समाज के तथाकथित नारी विमर्श के झंडाबरदारों के औचित्य को कठघरे में खड़ा करती है। संग्रह की कहानियाँ दर्द को प्रेम की चासनी में लपेटकर परोसी गई लगती हैं। पाठकों को बाँधकर रखने की क्षमता से भरी–पूरी हैं। कहानियाँ अतीत से वर्तमान की चलते हुये बहुत कुछ कह जाती हैं। कहानीकार मीनाधर पाठक जी अपनी कथ्य और भाव की शैली से प्रभावित करती हैं। कहानीकार का अपनी मातृभाषा भोजपुरी के प्रति आकर्षण सहज रूप से उमड़ा हुआ है, जो कहानियों को शक्ति देता दिखाई दे रहा है। 'व्यस्त चौराहे' कहानी संग्रह के लिए बहुत बहुत बधाई और शुभकामनायें। ◆

पुस्तक का नाम : व्यस्त चौराहे
कहानीकार : मीनाधर पाठक
मूल्य : रु260/–
प्रकाशन : वनिका प्रकाशन, नई दिल्ली
समीक्षक : जयशंकर प्रसाद द्विवेदी

पता : राधाकुंज अपार्टमेंट, प्लॉट नं.–20, फ्लैट नं.–3, द्वितीय तल, अवंतिका फेस–2, चिरंजीव विहार, आत्म निर्भर मार्ग, गाजियाबाद
मो. : 9220480327

लघुकथा

तीसरी बेटी

❑ वीरेंद्र बहादुर सिंह

राजेश सिंह के यहां जब तीसरी बेटी अस्तु पैदा हुई तो उनकी मां सीमा देवी नर्सिंग होम की सीढियां चढ़ कर बहू स्मिता का हालचाल पूछने पहुंच गईं। उम्र होने की वजह से सीढ़ियां चढ़ने में वह थक गई थीं। फिर भी हांफते हुए वह बहू के पलंग तक पहुंच गई थीं। सास की हालत देख कर स्मिता चिंता में डूब गई थी। उसने आदरपूर्वक कहा, ''मां, आपने इतनी तकलीफ क्यों उठाई। आप न भी आतीं तो चलता।''

''नहीं बहू बेटा, आज तो तुम्हारा हालचाल पूछने आना ज़रूरी था।'' सीमा देवी ने प्यार से स्मिता के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। उन्होंने गदगद स्वर में कहा, ''दो बेटियों के बाद तुम ने बेटे को जन्म दिया होता और मैं तुम्हारा हालचाल पूछने न आती तब चलता। पर तुम ने तीसरी बार भी बेटी को जन्म दिया है, इसलिए आई हूं। क्योंकि तुम्हें यह नहीं लगना चाहिए कि मुझे अच्छा नहीं लगा। तीसरी बेटी पैदा होने से तुम्हारा मन दुःखी न हो, इसलिए मेरा आना ज़रूरी था।'' ◆

पता : जेड–436ए, सेक्टर–12, नोएडा–201301 (उ.प्र.)
मो. : 8368681336

भूल सुधार–'उत्तर प्रदेश मासिक' फरवरी–मार्च–अप्रैल–2025 अंक में प्रकाशित सुशांत सुप्रिय की कहानी जो त्रुटिवश ''लौटना'' शीर्षक से प्रकाशित हुई है उसका शीर्षक ''किताबों की अलमारियाँ, पूर्वज और पिता'' है। त्रुटि के लिए खेद है। –सम्पादक

शीला पाण्डेय की पुस्तक 'अपने हिस्से का युद्ध' पर चर्चा

❑ कुमकुम शर्मा

''स्त्री जीवन का संघर्ष तो तय है। यदि स्त्री सिर्फ दूसरों के लिए जीती है तो 'स्वयं से' संघर्ष करती है और स्वयं के लिए लड़ती है तो दूसरों से संघर्ष करती है, क्योंकि हमारी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में स्त्री के स्वर के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी गई है। यह जगह उसे शक्तिशाली व्यवस्था के खिलाफ बनानी है।'' शीला पाण्डेय की पुस्तक की इन पंक्तियों का उल्लेख करते हुए लखनऊ विश्वविद्यालय की पूर्व कुलपति डॉ. रूपरेखा वर्मा ने अपना वक्तव्य दिया। उन्होंने पुस्तक में व्यक्त शीला जी के क्रांतिकारी विचारों पर प्रकाश डालते हुए अपनी बात कही। डॉ. रूपरेखा वर्मा जी दिनांक 28 जून शाम को पेपर मिल कॉलोनी स्थित कैफी आजमी सभागार में सुप्रसिद्ध लेखिका शीला पाण्डेय की पुस्तक 'अपने हिस्से का युद्ध' पर चर्चा के लिए आयोजित कार्यक्रम में मुख्य अतिथि एवं मुख्य वक्ता के रूप में बोल रही थीं।

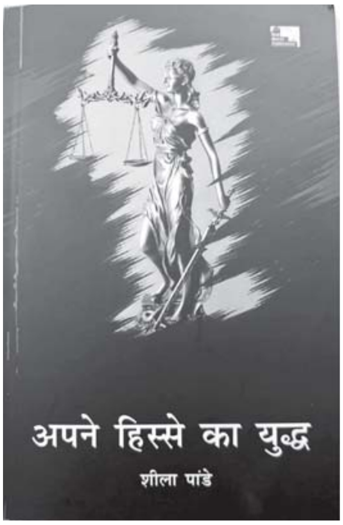

कार्यक्रम की शुरुआत दीप प्रज्ज्वलन एवं सरस्वती वंदना से की गई। श्री सत्येंद्र रघुवंशी जी ने विशिष्ट वक्ता के रूप में अपनी बात रखी। उन्होंने वर्तमान समाज में स्त्री की स्थिति पर विचार करते हुए पुस्तक से इस अंश को पढ़ते हुए स्त्री विमर्श पर अपने विचार व्यक्त किए। ''जितने भी कोमल भाव और संस्कार किसी भी मानव में पाए जाते हैं वह किसी स्त्री के माध्यम से ही बीजारोपित होते हैं। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों के निर्माण के लिए कह रही हूं। अर्थात मानसिक, भावनात्मक विकास और विमर्श, पुरुष के निमित्त किए जाने की आवश्यकता है।''

डॉ. रीता चौधरी ने अपने वक्तव्य के दौरान पुस्तक के अंत में उल्लिखित पंक्तियों को पढ़ा। ''रस्साकशी की रस्सी नहीं बन सकती मैं कि केवल किसी के हार या किन्हीं की जीत का माध्यम बनकर रह जाऊं। मैं 'मंदराचल' पर्वत हूँ। भले ही मुझे पाताल में गड़ना क्यों न पड़े पर मैं मथ डालूंगी सारा समुद्र! विष और अमृत को अलग करने के लिए!

''रीता जी ने स्त्री को एक मजबूत स्तंभ की तरह बताया जो जीवन भर अपनी सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में अपना देय देती रहती है और अपने को स्थिर भी रखती है। उन्होंने शीला जी की पुस्तक के अनेक अंशों का उल्लेख करते हुए अपनी बात स्पष्ट की। अति आत्मीय सदस्य के रूप में उपस्थित श्री अजीत प्रियदर्शी जी ने कार्यक्रम का कुशल संचालन किया तथा पुस्तक पर अपने विचार भी रखे। उन्होंने अपने वक्तव्य में पुस्तक के इस अंश का उल्लेख किया। 'रक्षात्मक कानून नहीं पहला अधिकार दो 'शीर्षक के लेख पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने कहा कि शीला जी ने स्त्री के अधिकार की बात को बड़ी समझदारी के साथ रखा है। इसके साथ ही उन्होंने इसी लेख की इन पंक्तियों को पढ़ा, ''स्त्री को साक्ष्यपरक रक्षात्मक

कानून नहीं, 'सम्पत्ति' और 'सन्तान' पर पहला 'हक़' चाहिए। इसे सुरक्षित करना होगा। इसके मिलते ही स्त्री स्वयं सुरक्षित हो जाएगी। धूर्त ठग भी सामने वाले की दयनीयता भांपकर ही उसे ठगने का उपक्रम बनाता है। उस पर अत्याचार करता है। हम इस सत्य को नहीं नकार सकते?''

अपने अध्यक्षीय भाषण में आध्यात्मिक नगरी बनारस से आए विद्वान डॉ. इंदीवर पाण्डेय जी ने शीला पाण्डेय के लेखन की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें पुस्तक के प्रकाशन पर बधाई देते हुए उन्हीं की पुस्तक के इस अंश को पढ़ा। ''शिक्षा के कई आयाम हैं, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक! जब तक समस्त तीनों आयामों के परिप्रेक्ष्य से स्त्री शिक्षित नहीं होती तब तक उसकी सामर्थ्य में कमतरी की अनुभूति बनी रहेगी, स्त्री की शिक्षा संपूर्ण नहीं होगी। स्त्री ही क्या पुरुष की भी शिक्षा सभी आयामों के परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण पड़नी चाहिए। शिक्षा, संसार और सृष्टि की समस्त गतिशीलता की संवाहक है।'' वे कहते हैं कि शीला जी एक ऐसे समाज की परिकल्पना करती हैं जहां स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से शिक्षित हों, तभी वे एक साथ मिलकर जीवन की सार्थकता को समझ सकेंगे। इंदीवर जी ने उत्कृष्ट और सार्थक लेखन के लिए उन्हें अनेक शुभकामनाएं दीं ।

अंत में शीला जी, अपनी बात कहते हुए कहती हैं कि ''मनुष्य के कर्म का उद्देश्य क्या है? उसके कर्मों का लक्ष्य क्या है और लक्ष्य की प्राप्ति के मध्यांतर उसका आचरण एवं उसकी विकास दृष्टि कैसी रही है? इस विकास की परिणति तमसजीवी है या यह प्रकाशोन्मुखी है। यह मानक निर्धारित करना दूसरे अर्थों में भावी मनुष्यता का पोषक बनकर दायित्व निर्वहन करना है। इस कर्म में खुशहाली और सुरक्षा का समन्वय है।''

यह कार्यक्रम आकाश गंगा न्यास के तत्वावधान में आयोजित किया गया। इस अवसर पर न्यास परिवार के सह संयोजक डॉ. अजीत प्रियदर्शी, सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ. रवि शंकर पाण्डेय, कुमकुम शर्मा तथा रामशंकर वर्मा भी उपस्थित थे। अतिथियों का स्वागत सुप्रसिद्ध गीतकार कवि सूचना विभाग उत्तर प्रदेश में अपर निदेशक के पद पर रह चुके डॉ. रवि शंकर पाण्डेय ने किया। कार्यक्रम में नगर के तमाम साहित्यकार विजय राय, सुभाष राय शैलेन्द्र सागर, सुधाकर अदीब, दीपा तिवारी, प्रतुल जोशी, चंद्रेश्वर जी, अरुण सिंह, राजेंद्र वर्मा, अनीता श्रीवास्तव आदि वरिष्ठ लेखक, साहित्यकार, पाठक, सुधी श्रोता एवं गणमान्य नागरिक उपस्थित रहे। कार्यक्रम के अंत में धन्यवाद ज्ञापन शीला पाण्डेय ने किया। ◆

पता : जानकीपुरम, लखनऊ–226021
मो. : 896000096

ई–पेमेण्ट हेतु प्रपत्र

DDO Code

4731

Name (Account holder)

Account Number

Bank Name

ACCOUNT TYPE

☐ SBI Account

☐ Other Then SBI Account

(Tick Type of account "SBI Account" or "Other then SBI Account")

Branch Code / IFSC Code

(Branch Code if account type is SBI Account else IFSC Code)

Address 1	
Address 2	
Address 3	
Mob. No.	
Email ID	

उत्तर प्रदेश

सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0प्र0,
लखनऊ

ग्राहक/सदस्यता संबंधी प्रारूप

मैं 'उत्तर प्रदेश' (मासिक) पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करना चाहता हूँ

वार्षिक	रु. 180/-	☐
द्विवार्षिक	रु. 360/-	☐
त्रैवार्षिक	रु. 540/-	☐

(कृपया सदस्यता अवधि चिन्हित करें)

डी.डी/म.आ.नं. : ________________ तिथि ________

नाम : ________________

ग्राहक का विवरण : छात्र ☐ विद्वत्जन ☐

संस्था ☐ अन्य ☐

पत्र व्यवहार का पता : ________________

____

____

पिन कोड नं0: ☐☐☐☐☐☐

यदि आप पता बदलना चाहते हैं अथवा ग्राहक नवीनीकरण करना चाहते हैं तो कृपया अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें ☐

नोट : कृपया डी.डी./एम.ओ. (धनादेश) निदेशक सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग (प्रकाशन प्रभाग), दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ–226 001 के नाम ही भेजने का कष्ट करें।

रविन्द्र सिंह पंवार की कविता

बदलती हवा

समय चक्र की तीव्र गति से, हवा बदलती जाती है।।
कहाँ गई वह माँ की चकिया भोर भये चल पड़ती थी ?
सुबह सवेरे गौरैया आँगन में रोज़ उछलती थी।
सुन्दर तोतों की पंचायत शाखाओं पर सजती थी।
घर–घर में दधि के मंथन की अमृत ध्वनि निकलती थी।।
सूनेपन की मूक फिज़ा में आह निकलती जाती है।
समय चक्र की तीव्र गति से, हवा बदलती जाती है।।

उजड़ गये गौरैया के घर जो छप्पर में होते थे।
जला दिए पेड़ों के कोटर तोते जिनमें सोते थे।
लील गया बैलों को मानव, जो घर का बोझा ढ़ोते थे।
दूध गया डेरी में जिसको पीकर सब दृढ़ होते थे।।
सूखे कागज़ के रुपयों पर नियत फिसलती जाती है।
समय चक्र की तीव्र गति से, हवा बदलती जाती है।।

मानवता के मूल्य घट गये, पैसा बढ़ता जाता है।
संस्कार सब ख़त्म हो गये, रुतबा बढ़ता जाता है।
सबकुछ पाकर भी भूखा, आपस में लड़ता जाता है।
स्वार्थजनित झूठे विकास की, सीढ़ी चढ़ता जाता है।।
धर्म ध्वजा थामे हाथों की, जान निकलती जाती है।
समय चक्र की तीव्र गति से हवा बदलती जाती है।।

▪

पता : डी–216, संगम विहार, नई दिल्ली–80
मो. : 9810318136

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक : समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

नया दौर (उर्दू) : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी) : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित